कबीर के दोहे

Dear friends.
Here I tried to put together works of Kabir. If you find it interesting and want to write comments on any of the verse in English or want to translate in English then please feel free to send your comments to uanant@yahoo.com. I will gladly incorporate the changes in the file. Feel free to correct me if you find any errors.

Let's understand age old knowledge through healthy discussions.
Enjoy reading.

VISIT…

LANZAROTE Caliente.com

दुख में सुमरिन सब करे, सुख मे करे न कोय ।
जो सुख मे सुमरिन करे, दुख कहे को होय ॥ 1 ॥

तिनका कबहुँ ना निंदिये, जो पाँव तले होय ।
कबहुँ उड़ आँखो पड़े, पीर घानेरी होय ॥ 2 ॥

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
कर का मन का डार दें, मन का मनका फेर ॥ 3 ॥

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपनो, गोविंद दियो बताय ॥ 4 ॥

बलिहारी गुरु आपनो, घड़ी-घड़ी सौ सौ बार ।
मानुष से देवत किया करत न लागी बार ॥ 5 ॥

कबीरा माला मनहि की, और संसारी भीख ।
माला फेरे हरि मिले, गले रहट के देख ॥ 6 ॥

सुख मे सुमिरन ना किया, दु:ख में किया याद ।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद ॥ 7 ॥

साईं इतना दीजिये, जा मे कुटुम समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु ना भूखा जाय ॥ 8 ॥

लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट ।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट ॥ 9 ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ 10 ॥

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहाँ पाप है, जहाँ क्षमा तहाँ आप ॥ 11 ॥

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय ।

माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय ॥ 12 ॥

कबीरा ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रुठै नहीं ठौर ॥ 13 ॥

पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय ।
एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय ॥ 14 ॥

कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान ।
जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान ॥ 15 ॥

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनन की खान ।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ॥ 16 ॥

माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर ।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर ॥ 17 ॥

माटी कहे कुम्हार से, तु क्या रौंदे मोय ।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूंगी तोय ॥ 18 ॥

रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय ।
हीना जन्म अनमोल था, कोड़ी बदले जाय ॥ 19 ॥

नींद निशानी मौत की, उठ कबीरा जाग ।
और रसायन छांड़ि के, नाम रसायन लाग ॥ 20 ॥

जो तोकु कांटा बुवे, ताहि बोय तू फूल ।
तोकू फूल के फूल है, बाकू है त्रिशूल ॥ 21 ॥

दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार ।
तरुवर ज्यों पत्ती झड़े, बहुरि न लागे डार ॥ 22 ॥
आय हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जात जंजीर ॥ 23 ॥

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब ॥ 24 ॥

माँगन मरण समान है, मति माँगो कोई भीख ।
माँगन से तो मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥ 25 ॥

जहाँ आपा तहाँ आपदां, जहाँ संशय तहाँ रोग ।
कह कबीर यह क्यों मिटे, चारों धीरज रोग ॥ 26 ॥

माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय ।
भगता के पीछे लगे, सम्मुख भागे सोय ॥ 27 ॥

आया था किस काम को, तु सोया चादर तान ।
सुरत सम्भाल ए गाफिल, अपना आप पहचान ॥ 28 ॥

क्या भरोसा देह का, बिनस जात छिन मांह ।
साँस-सांस सुमिरन करो और यतन कुछ नांह ॥ 29 ॥

गारी ही सों ऊपजे, कलह कष्ट और मींच ।
हारि चले सो साधु है, लागि चले सो नींच ॥ 30 ॥

दुर्बल को न सताइए, जाकि मोटी हाय ।
बिना जीव की हाय से, लोहा भस्म हो जाय ॥ 31 ॥

दान दिए धन ना घते, नदी ने घटे नीर ।
अपनी आँखों देख लो, यों क्या कहे कबीर ॥ 32 ॥

दस द्वारे का पिंजरा, तामे पंछी का कौन ।
रहे को अचरज है, गए अचम्भा कौन ॥ 33 ॥

ऐसी वाणी बोलेए, मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ॥ 34 ॥

हीरा वहाँ न खोलिये, जहाँ कुंजड़ों की हाट ।
बांधो चुप की पोटरी, लागहु अपनी बाट ॥ 35 ॥

कुटिल वचन सबसे बुरा, जारि कर तन हार ।
साधु वचन जल रूप, बरसे अमृत धार ॥ 36 ॥

जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय ।
यह आपा तो ड़ाल दे, दया करे सब कोय ॥ 37 ॥

मैं रोऊँ जब जगत को, मोको रोवे न होय ।
मोको रोबे सोचना, जो शब्द बोय की होय ॥ 38 ॥

सोवा साधु जगाइए, करे नाम का जाप ।
यह तीनों सोते भले, साकित सिंह और साँप ॥ 39 ॥

अवगुन कहूँ शराब का, आपा अहमक साथ ।
मानुष से पशुआ करे दाय, गाँठ से खात ॥ 40 ॥

बाजीगर का बांदरा, ऐसा जीव मन के साथ ।
नाना नाच दिखाय कर, राखे अपने साथ ॥ 41 ॥

अटकी भाल शरीर में तीर रहा है टूट ।
चुम्बक बिना निकले नहीं कोटि पटन को फ़ूट ॥ 42 ॥

कबीरा जपना काठ की, क्या दिख्लावे मोय ।
हृदय नाम न जपेगा, यह जपनी क्या होय ॥ 43 ॥

पतिवृता मैली, काली कुचल कुरूप ।
पतिवृता के रूप पर, वारो कोटि सरूप ॥ 44 ॥
बैध मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार ।
एक कबीरा ना मुआ, जेहि के राम अधार ॥ 45 ॥

हर चाले तो मानव, बेहद चले सो साध ।
हद बेहद दोनों तजे, ताको भता अगाध ॥ 46 ॥

राम रहे बन भीतरे गुरु की पूजा ना आस ।
रहे कबीर पाखण्ड सब, झूठे सदा निराश ॥ 47 ॥

जाके जिव्या बन्धन नहीं, ह्र्दय में नहीं साँच ।
वाके संग न लागिये, खाले वटिया काँच ॥ 48 ॥

तीरथ गये ते एक फल, सन्त मिले फल चार ।
सत्गुरु मिले अनेक फल, कहें कबीर विचार ॥ 49 ॥

सुमरण से मन लाइए, जैसे पानी बिन मीन ।
प्राण तजे बिन बिछड़े, सन्त कबीर कह दीन ॥ 50 ॥

समझाये समझे नहीं, पर के साथ बिकाय ।
मैं खींचत हूँ आपके, तू चला जमपुर जाए ॥ 51 ॥

हंसा मोती विण्न्या, कुञ्च्न थार भराय ।
जो जन मार्ग न जाने, सो तिस कहा कराय ॥ 52 ॥

कहना सो कह दिया, अब कुछ कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥ 53 ॥

वस्तु है ग्राहक नहीं, वस्तु सागर अनमोल ।
बिना करम का मानव, फिरैं डांवाडोल ॥ 54 ॥

कली खोटा जग आंधरा, शब्द न माने कोय ।
चाहे कहँ सत आइना, जो जग बैरी होय ॥ 55 ॥

कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय ।
भक्ति करे कोइ सूरमा, जाति वरन कुल खोय ॥ 56 ॥

जागन में सोवन करे, साधन में लौ लाय।
सूरत डोर लागी रहे, तार टूट नाहिं जाय ॥ 57 ॥

साधु ऐसा चहिए ,जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथ देइ उड़ाय ॥ 58 ॥

लगी लग्न छूटे नाहिं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥ 59 ॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावे कोई ले जाय।
कह कबीर कुछ भेद नाहिं, कहां रंक कहां राय ॥ 60 ॥

घट का परदा खोलकर, सन्मुख दे दीदार।
बाल सनेही सांइयाँ, आवा अन्त का यार ॥ 61 ॥

अन्तर्यामी एक तुम, आत्मा के आधार।
जो तुम छोड़ो हाथ तो, कौन उतारे पार ॥ 62 ॥

मैं अपराधी जन्म का, नख-सिख भरा विकार।
तुम दाता दुःख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ 63 ॥

प्रेम न बड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा-प्रजा जोहि रुचें, शीश देई ले जाय ॥ 64 ॥

प्रेम प्याला जो पिये, शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश न दे सके, नाम प्रेम का लेय ॥ 65 ॥

सुमिरन में मन लाइए, जैसे नाद कुरंग।
कहैं कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजे तेहि संग ॥ 66 ॥

सुमरित सुरत जगाय कर, मुख के कछु न बोल।
बाहर का पट बन्द कर, अन्दर का पट खोल ॥ 67 ॥

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोई साधु है, सत का छाननहार ॥ 68 ॥

ज्यों तिल मांही तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा सांई तुझमें, बस जाग सके तो जाग ॥ 69 ॥

जा करण जग ढ़ूँढ़िया, सो तो घट ही मांहि।
परदा दिया भरम का, ताते सूझे नाहिं ॥ 70 ॥

जबही नाम हिरदे घरा, भया पाप का नाश।
मानो चिंगरी आग की, परी पुरानी घास ॥ 71 ॥

नहीं शीतल है चन्द्रमा, हिंम नहीं शीतल होय।
कबीरा शीतल सन्त जन, नाम सनेही सोय ॥ 72 ॥

आहार करे मन भावता, इंदी किए स्वाद।
नाक तलक पूरन भरे, तो का कहिए प्रसाद ॥ 73 ॥

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़े हरि भजे, भगत कहावें सोय ॥ 74 ॥

जल ज्यों प्यारा माहरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बारका, भगति प्यारा नाम ॥ 75 ॥

दिल का मरहम ना मिला, जो मिला सो गर्जी।
कह कबीर आसमान फटा, क्योंकर सीवे दर्जी ॥ 76 ॥

बानी से पह्चानिये, साम चोर की घात।
अन्दर की करनी से सब, निकले मुँह कई बात ॥ 77 ॥

जब लगि भगति सकाम है, तब लग निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निष्कामी तज देव ॥ 78 ॥

फूटी आँख विवेक की, लखे ना सन्त असन्त ।
जाके संग दस-बीस हैं, ताको नाम महन्त ॥ 79 ॥

दाया भाव ह्र्दय नहीं, ज्ञान थके बेहद ।
ते नर नरक ही जायेंगे, सुनि-सुनि साखी शब्द ॥ 80 ॥

दाया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय ।
सांई के सब जीव है, कीरी कुंजर दोय ॥ 81 ॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाय ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता मे दो न समाय ॥ 82 ॥

छिन ही चढ़े छिन ही उतरे, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजरे बसे, प्रेम कहावे सोय ॥ 83 ॥

जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं वहाँ काम ।
दोनों कबहूँ नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम ॥ 84 ॥

कबीरा धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय ।
टूट एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥ 85 ॥

ऊँचे पानी न टिके, नीचे ही ठहराय ।
नीचा हो सो भरिए पिए, ऊँचा प्यासा जाय ॥ 86 ॥

सबते लघुताई भली, लघुता ते सब होय ।
जौसे दूज का चन्द्रमा, शीश नवे सब कोय ॥ 87 ॥

संत ही में सत बांटई, रोटी में ते टूक ।
कहे कबीर ता दास को, कबहूँ न आवे चूक ॥ 88 ॥
मार्ग चलते जो गिरा, ताकों नाहि दोष ।
यह कबिरा बैठा रहे, तो सिर करड़े दोष ॥ 89 ॥

जब ही नाम ह्रदय धरयो, भयो पाप का नाश ।
मानो चिनगी अग्नि की, परि पुरानी घास ॥ 90 ॥

काया काठी काल घुन, जतन-जतन सो खाय ।
काया वैध ईश बस, मर्म न काहू पाय ॥ 91 ॥

सुख सागर का शील है, कोई न पावे थाह ।
शब्द बिना साधु नही, द्रव्य बिना नहीं शाह ॥ 92 ॥

बाहर क्या दिखलाए, अनन्तर जपिए राम ।
कहा काज संसार से, तुझे धनी से काम ॥ 93 ॥

फल कारण सेवा करे, करे न मन से काम ।
कहे कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥ 94 ॥

तेरा साँई तुझमें, ज्यों पहुपन में बास ।
कस्तूरी का हिरन ज्यों, फिर-फिर ढूँढ़त घास ॥ 95 ॥

कथा-कीर्तन कुल विशे, भवसागर की नाव ।
कहत कबीरा या जगत में नाहि और उपाव ॥ 96 ॥

कबिरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगा ।
कै सेवा कर साधु की, कै गोविंद गुन गा ॥ 97 ॥

तन बोहत मन काग है, लक्ष योजन उड़ जाय ।
कबहु के धर्म अगम दयी, कबहुं गगन समाय ॥ 98 ॥

जहँ गाहक ता हूँ नहीं, जहाँ मैं गाहक नाँय ।
मूरख यह भरमत फिरे, पकड़ शब्द की छाँय ॥ 99 ॥
कहता तो बहुत मिला, गहता मिला न कोय ।
सो कहता वह जान दे, जो नहिं गहता होय ॥ 100 ॥

तब लग तारा जगमगे, जब लग उगे न सूर ।

तब लग जीव जग कर्मवश, ज्यों लग ज्ञान न पूर ॥ 101 ॥

आस पराई राख्त, खाया घर का खेत ।
औरन को प्त बोधता, मुख में पड़ रेत ॥ 102 ॥

सोना, सज्ञन, साधु जन, टूट जुड़ै सौ बार ।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार के, ऐके धका दरार ॥ 103 ॥

सब धरती कारज करूँ, लेखनी सब बनराय ।
सात समुद्र की मसि करूँ गुरुगुन लिखा न जाय ॥ 104 ॥

बलिहारी वा दूध की, जामे निकसे घीव ।
घी साखी कबीर की, चार वेद का जीव ॥ 105 ॥

आग जो लागी समुद्र में, धुआँ न प्रकट होय ।
सो जाने जो जरमुआ, जाकी लाई होय ॥ 106 ॥

साधु गाँठि न बाँधई, उदर समाता लेय ।
आगे-पीछे हरि खड़े जब भोगे तब देय ॥ 107 ॥

घट का परदा खोलकर, सन्मुख दे दीदार ।
बाल सने ही सांइया, आवा अन्त का यार ॥ 108 ॥

कबिरा खालिक जागिया, और ना जागे कोय ।
जाके विषय विष भरा, दास बन्दगी होय ॥ 109 ॥

ऊँचे कुल में जामिया, करनी ऊँच न होय ।
सौरन कलश सुरा, भरी, साधु निन्दा सोय ॥ 110 ॥

सुमरण की सुब्यों करो ज्यों गागर पनिहार ।
होले-होले सुरत में, कहैं कबीर विचार ॥ 111 ॥

सब आए इस एक में, डाल-पात फल-फूल ।

कबिरा पीछा क्या रहा, गह पकड़ी जब मूल ॥ 112 ॥

जो जन भीगे रामरस, विगत कबहूँ ना रूख ।
अनुभव भाव न दरसते, ना दुःख ना सुख ॥ 113 ॥

सिंह अकेला बन रहे, पलक-पलक कर दौर ।
जैसा बन है आपना, तैसा बन है और ॥ 114 ॥

यह माया है चूहड़ी, और चूहड़ा कीजो ।
बाप-पूत उरभाय के, संग ना काहो केहो ॥ 115 ॥

जहर की जर्मी में है रोपा, अभी खींचे सौ बार ।
कबिरा खलक न तजे, जामे कौन विचार ॥ 116 ॥

जग मे बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय ।
यह आपा तो डाल दे, दया करे सब कोय ॥ 117 ॥

जो जाने जीव न आपना, करहीं जीव का सार ।
जीवा ऐसा पाहौना, मिले ना दूजी बार ॥ 118 ॥

कबीर जात पुकारया, चढ़ चन्दन की डार ।
बाट लगाए ना लगे फिर क्या लेत हमार ॥ 119 ॥

लोग भरोसे कौन के, बैठे रहें उरगाय ।
जीय रही लूटत जम फिरे, मैँढ़ा लुटे कसाय ॥ 120 ॥

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार ।
है जैसा तैसा हो रहे, रहें कबीर विचार ॥ 121 ॥

जो तु चाहे मुक्त को, छोड़े दे सब आस ।
मुक्त ही जैसा हो रहे, बस कुछ तेरे पास ॥ 122 ॥

साँई आगे साँच है, साँई साँच सुहाय ।

चाहे बोले केस रख, चाहे घौंट भुण्डाय ॥ 123 ॥

अपने-अपने साख की, सबही लीनी मान ।
हरि की बातें दुरन्तरा, पूरी ना कहूँ जान ॥ 124 ॥

खेत ना छोड़े सूरमा, जूझे दो दल मोह ।
आशा जीवन मरण की, मन में राखें नोह ॥ 125 ॥

लीक पुरानी को तजें, कायर कुटिल कपूत ।
लीख पुरानी पर रहें, शातिर सिंह सपूत ॥ 126 ॥

सन्त पुरुष की आरसी, सन्तों की ही देह ।
लखा जो चहे अलख को, उन्हीं में लख लेह ॥ 127 ॥

भूखा-भूखा क्या करे, क्या सुनावे लोग ।
भांडा घड़ निज मुख दिया, सोई पूर्ण जोग ॥ 128 ॥

गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागा हर का सेव ।
कहे कबीर बैकुण्ठ से, फेर दिया शुक्देव ॥ 129 ॥

प्रेमभाव एक चाहिए, भेष अनेक बनाय ।
चाहे घर में वास कर, चाहे बन को जाय ॥ 130 ॥

कांचे भाडें से रहे, ज्यों कुम्हार का देह ।
भीतर से रक्षा करे, बाहर चोई देह ॥ 131 ॥

साँई ते सब होते है, बन्दे से कुछ नाहिं ।
राई से पर्वत करे, पर्वत राई माहिं ॥ 132 ॥

केतन दिन ऐसे गए, अन रुचे का नेह ।
अवसर बोवे उपजे नहीं, जो नहीं बरसे मेह ॥ 133 ॥

एक ते अनन्त अन्त एक हो जाय ।

एक से परचे भया, एक मोह समाय ॥ 134 ॥

साधु सती और सूरमा, इनकी बात अगाध ।
आशा छोड़े देह की, तन की अनथक साध ॥ 135 ॥

हरि संगत शीतल भया, मिटी मोह की ताप ।
निशिवासर सुख निधि, लहा अन्न प्रगटा आप ॥ 136 ॥

आशा का ईंधन करो, मनशा करो बभूत ।
जोगी फेरी यों फिरो, तब वन आवे सूत ॥ 137 ॥

आग जो लगी समुद्र में, धुआँ ना प्रकट होय ।
सो जाने जो जरमुआ, जाकी लाई होय ॥ 138 ॥

अटकी भाल शरीर में, तीर रहा है टूट ।
चुम्बक बिना निकले नहीं, कोटि पठन को फूट ॥ 139 ॥

अपने-अपने साख की, सब ही लीनी भान ।
हरि की बात दुरन्तरा, पूरी ना कहूँ जान ॥ 140 ॥

आस पराई राखता, खाया घर का खेत ।
औरन को पथ बोधता, मुख में डारे रेत ॥ 141 ॥

आवत गारी एक है, उलटन होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥ 142 ॥

आहार करे मनभावता, इंद्री की स्वाद ।
नाक तलक पूरन भरे, तो कहिए कौन प्रसाद ॥ 143 ॥

आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बाँधि जंजीर ॥ 144 ॥

आया था किस काम को, तू सोया चादर तान ।

सूरत सँभाल ए काफिला, अपना आप पह्चान ॥ 145 ॥

उज्ञवल पहरे कापड़ा, पान-सुपरी खाय।
एक हरि के नाम बिन, बाँधा यमपुर जाय ॥ 146 ॥

उतते कोई न आवई, पासू पूछूँ धाय।
इतने ही सब जात है, भार लदाय लदाय ॥ 147 ॥

अवगुन कहूँ शराब का, आपा अहमक होय।
मानुष से पशुआ भया, दाम गाँठ से खोय ॥ 148 ॥

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार।
है जैसा तैसा रहे, रहे कबीर विचार ॥ 149 ॥

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए।
औरन को शीतल करे, आपौ शीतल होय ॥ 150 ॥

कबीरा संग्ङति साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिले, ताकर संग न जाय ॥ 151 ॥

एक ते जान अनन्त, अन्य एक हो आय।
एक से परचे भया, एक बाहे समाय ॥ 152 ॥

कबीरा गरब न कीजिए, कबहूँ न हँसिये कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में, ना जाने का होय ॥ 153 ॥

कबीरा कलह अरु कल्पना, सतसंगति से जाय।
दुख बासे भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥ 154 ॥

कबीरा संगति साधु की, जित प्रीत कीजै जाय।
दुर्गति दूर वहावति, देवी सुमति बनाय ॥ 155 ॥

कबीरा संगत साधु की, निष्फल कभी न होय।

होमी चन्दन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ 156 ॥

को छूटौ इहिं जाल परि, कत फुरंग अकुलाय ।
ज्यों-ज्यों सुरझि भजौ चहै, त्यों-त्यों उरझत जाय ॥ 157 ॥

कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान ।
जम जब घर ले जाएँगे, पड़ा रहेगा म्यान ॥ 158 ॥

काह भरोसा देह का, बिनस जात छिन मारहिं ।
साँस-साँस सुमिरन करो, और यतन कछु नाहिं ॥ 159 ॥

काल करे से आज कर, सबहि सात तुव साथ ।
काल काल तू क्या करे काल काल के हाथ ॥ 160 ॥

काया काढ़ा काल घुन, जतन-जतन सो खाय ।
काया बह्मा ईश बस, मर्म न काहूँ पाय ॥ 161 ॥

कहा कियो हम आय कर, कहा करेंगे पाय ।
इनके भये न उतके, चाले मूल गवाय ॥ 162 ॥

कुटिल बचन सबसे बुरा, जासे होत न हार ।
साधु वचन जल रूप है, बरसे अम्रत धार ॥ 163 ॥

कहता तो बहूँना मिले, गहना मिला न कोय ।
सो कहता वह जान दे, जो नहीं गहना कोय ॥ 164 ॥

कबीरा मन पँछी भया, भये ते बाहर जाय ।
जो जैसे संगति करै, सो तैसा फल पाय ॥ 165 ॥

कबीरा लोहा एक है, गढ़ने में है फेर ।
ताहि का बखतर बने, ताहि की शमशेर ॥ 166 ॥

कहे कबीर देय तू, जब तक तेरी देह ।

देह खेह हो जाएगी, कौन कहेगा देह ॥ 167 ॥

करता था सो क्यों किया, अब कर क्यों पछिताय ।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय ॥ 168 ॥

कस्तूरी कुन्डल बसे, म्रग ढ़ूंढ़े बन माहिं ।
ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखे नाहिं ॥ 169 ॥

कबीरा सोता क्या करे, जागो जपो मुरार ।
एक दिना है सोवना, लांबे पाँव पसार ॥ 170 ॥

कागा काको घन हरे, कोयल काको देय ।
मीठे शब्द सुनाय के, जग अपनो कर लेय ॥ 171 ॥

कबिरा सोई पीर है, जो जा नैं पर पीर ।
जो पर पीर न जानइ, सो काफिर के पीर ॥ 172 ॥
कबिरा मनहि गयन्द है, आकुंश दै-दै राखि ।
विष की बेली परि रहै, अम्रत को फल चाखि ॥ 173 ॥

कबीर यह जग कुछ नहीं, खिन खारा मीठ ।
काल्ह जो बैठा भण्डपै, आज भसाने दीठ ॥ 174 ॥

कबिरा आप ठगाइए, और न ठगिए कोय ।
आप ठगे सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥ 175 ॥

कथा कीर्तन कुल विशे, भव सागर की नाव ।
कहत कबीरा या जगत, नाहीं और उपाय ॥ 176 ॥

कबिरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगा ।
कै सेवा कर साधु की, कै गोविंद गुनगा ॥ 177 ॥

कलि खोटा सजग आंधरा, शब्द न माने कोय ।
चाहे कहूँ सत आइना, सो जग बैरी होय ॥ 178 ॥

केतन दिन ऐसे गए, अन रुचे का नेह ।
अवसर बोवे उपजे नहीं, जो नहिं बरसे मेह ॥ 179 ॥

कबीर जात पुकारया, चढ़ चन्दन की डार ।
वाट लगाए ना लगे फिर क्या लेत हमार ॥ 180 ॥

कबीरा खालिक जागिया, और ना जागे कोय ।
जाके विषय विष भरा, दास बन्दगी होय ॥ 181 ॥

गाँठि न थामहिं बाँध ही, नहिं नारी सो नेह ।
कह कबीर वा साधु की, हम चरनन की खेह ॥ 182 ॥

खेत न छोड़े सूरमा, जूझे को दल माँह ।
आशा जीवन मरण की, मन में राखे नाँह ॥ 183 ॥

चन्दन जैसा साधु है, सर्पहि सम संसार ।
वाके अग्ङ लपटा रहे, मन मे नाहिं विकार ॥ 184 ॥

घी के तो दर्शन भले, खाना भला न तेल ।
दाना तो दुश्मन भला, मूरख का क्या मेल ॥ 185 ॥

गारी ही सो ऊपजे, कलह कष्ट और भींच ।
हारि चले सो साधु हैं, लागि चले तो नीच ॥ 186 ॥

चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइके, साबित बचा न कोय ॥ 187 ॥

जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारी ।
राम नाम रसना बसे, लीजै जनम सुधारि ॥ 188 ॥

जब लग भक्ति से काम है, तब लग निष्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिले, निःकामा निज देव ॥ 189 ॥

जो तोकूं काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोकू फूल के फूल है, बाँकू है तिरशूल ॥ 190 ॥

जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान समान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेतु बिन प्रान ॥ 191 ॥

ज्यों नैनन में पूतली, त्यों मालिक घर माहिं।
मूर्ख लोग न जानिए, बहर ढूंढ़त जांहि ॥ 192 ॥

जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुछुप बास तें पामरा, ऐसा तत्व अनूप ॥ 193 ॥

जहाँ आप तहाँ आपदा, जहाँ संशय तहाँ रोग।
कह कबीर यह क्यों मिटैं, चारों बाधक रोग ॥ 194 ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ 195 ॥

जल की जमी में है रोपा, अभी सींचें सौ बार।
कबिरा खलक न तजे, जामे कौन वोचार ॥ 196 ॥

जहाँ ग्राहक तँह मैं नहीं, जँह मैं गाहक नाय।
बिको न यक भरमत फिरे, पकड़ी शब्द की छाँय ॥ 197 ॥

झूठे सुख को सुख कहै, मानता है मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥ 198 ॥

जो तु चाहे मुक्ति को, छोड़ दे सबकी आस।
मुक्त ही जैसा हो रहे, सब कुछ तेरे पास ॥ 199 ॥

जो जाने जीव आपना, करहीं जीव का सार।
जीवा ऐसा पाहौना, मिले न दीजी बार ॥ 200 ॥

ते दिन गये अकारथी, संगत भई न संत।
प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥ 201 ॥

तीर तुपक से जो लड़े, सो तो शूर न होय।
माया तजि भक्ति करे, सूर कहावै सोय ॥ 202 ॥

तन को जोगी सब करे, मन को बिरला कोय।
सहजै सब विधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ 203 ॥

तब लग तारा जगमगे, जब लग उगे नसूर।
तब लग जीव जग कर्मवश, जब लग ज्ञान ना पूर ॥ 204 ॥

दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारम्बार।
तरुवर ज्यों पत्ती झड़े, बहुरि न लागे डार ॥ 205 ॥

दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी मौन।
रहे को अचरज भयौ, गये अचम्भा कौन ॥ 206 ॥

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सीचें सौ घड़ा, ॠतु आए फल होय ॥ 207 ॥

न्हाये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥ 208 ॥

पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर भी नाम बीन, मुक्ति कैसे होय ॥ 209 ॥

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंड़ित होय ॥ 210 ॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जाएगा, ज्यों सारा परभात ॥ 211 ॥

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजौं पहार।
याते ये चक्की भली, पीस खाय संसार ॥ 212 ॥

पत्ता बोला वृक्ष से, सुनो वृक्ष बनराय।
अब के बिछुड़े ना मिले, दूर पड़ेंगे जाय ॥ 213 ॥

प्रेमभाव एक चाहिए, भेष अनेक बजाय।
चाहे घर में बास कर, चाहे बन मे जाय ॥ 214 ॥

बन्धे को बँनधा मिले, छूटे कौन उपाय।
कर संगति निरबन्ध की, पल में लेय छुड़ाय ॥ 215 ॥

बूँद पड़ी जो समुद्र में, ताहि जाने सब कोय।
समुद्र समाना बूँद में, बूझै बिरला कोय ॥ 216 ॥

बाहर क्या दिखराइये, अन्तर जपिए राम।
कहा काज संसार से, तुझे धनी से काम ॥ 217 ॥

बानी से पहचानिए, साम चोर की घात।
अन्दर की करनी से सब, निकले मुँह की बात ॥ 218 ॥

बड़ा हुआ सो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पँछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥ 219 ॥

मूँड़ मुड़ाये हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय।
बार-बार के मुड़ते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥ 220 ॥

माया तो ठगनी बनी, ठगत फिरे सब देश।
जा ठग ने ठगनी ठगो, ता ठग को आदेश ॥ 221 ॥

भज दीना कहूँ और ही, तन साधुन के संग।
कहैं कबीर कारी गजी, कैसे लागे रंग ॥ 222 ॥

माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय।
भागत के पीछे लगे, सन्मुख भागे सोय ॥ 223 ॥

मथुरा भावै द्वारिका, भावे जो जगन्नाथ।
साधु संग हरि भजन बिनु, कछु न आवे हाथ ॥ 224 ॥

माली आवत देख के, कलियान करी पुकार।
फूल-फूल चुन लिए, काल हमारी बार ॥ 225 ॥

मैं रोऊँ सब जगत् को, मोको रोवे न कोय।
मोको रोवे सोचना, जो शब्द बोय की होय ॥ 226 ॥

ये तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुँई धरे, तब बैठें घर माहिं ॥ 227 ॥

या दुनियाँ में आ कर, छाँड़ि देय तू ऐंठ।
लेना हो सो लेइले, उठी जात है पैंठ ॥ 228 ॥

राम नाम चीन्हा नहीं, कीना पिंजर बास।
नैन न आवे नीदरौं, अलग न आवे भास ॥ 229 ॥

रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जन्म अनमोल था, कौंड़ी बदले जाए ॥ 230 ॥

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु सगं में, सो बैकुंठ न होय ॥ 231 ॥

संगति सों सुख्या ऊपजे, कुसंगति सो दुख होय।
कह कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥ 232 ॥

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय।
ज्यों मेहँदी के पात में, लाली रखी न जाय ॥ 233 ॥

साँझ पड़े दिन बीतबै, चकवी दीन्ही रोय।
चल चकवा वा देश को, जहाँ रैन नहिं होय ॥ 234 ॥

संह ही मे सत बाँटे, रोटी में ते टूक।
कहे कबीर ता दास को, कबहुँ न आवे चूक ॥ 235 ॥

साईं आगे साँच है, साईं साँच सुहाय।
चाहे बोले केस रख, चाहे घौंट मुण्डाय ॥ 236 ॥

लकड़ी कहै लुहार की, तू मति जारे मोहिं।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहि ॥ 237 ॥

हरिया जाने रुखड़ा, जो पानी का गेह।
सूखा काठ न जान ही, केतुउ बूड़ा मेह ॥ 238 ॥

ज्ञान रतन का जतनकर माटी का संसार।
आय कबीर फिर गया, फीका है संसार ॥ 239 ॥

ॠद्धि सिद्धि माँगो नहीं, माँगो तुम पै येह।
निसि दिन दरशन शाधु को, प्रभु कबीर कहुँ देह ॥ 240 ॥

क्षमा बड़े न को उचित है, छोटे को उत्पात।
कहा विष्णु का घटि गया, जो भुगु मारीलात ॥ 241 ॥

राम-नाम कै पटं तरै, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माहिं ॥ 242 ॥
बलिहारी गुर आपणौ, घौंहाड़ी कै बार।
जिनि भानिष तैं देवता, करत न लागी बार ॥ 243 ॥

ना गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दुन्यू बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ 244 ॥

सतगुर हम सूं रीझि करि, एक कह्मा कर संग।
बरस्या बादल प्रेम का, भींजि गया अब अंग ॥ 245 ॥

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वाँग जती का पहरि करि, धरि-धरि माँगे भीष ॥ 246 ॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान ॥ 247 ॥

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू ॥ 248 ॥

राम पियारा छांड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूतं ज्यूं, कहै कौन सू बाप ॥ 249 ॥

कबीरा प्रेम न चषिया, चषि न लिया साव।
सूने घर का पांहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव ॥ 250 ॥

कबीरा राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥ 251 ॥

लंबा मारग, दूरिधर, विकट पंथ, बहुमार।
कहौ संतो, क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार ॥ 252 ॥

बिरह-भुवगम तन बसै मंत्र न लागै कोइ।
राम-बियोगी ना जिवै जिवै तो बौरा होइ ॥ 253 ॥
यह तन जालों मसि करों, लिखों राम का नाउं।
लेखणि करूं करंक की, लिखी-लिखी राम पठाउं ॥ 254 ॥

अंदेसड़ा न भाजिसी, सदैसो कहियां।
के हरि आयां भाजिसी, कैहरि ही पास गयां ॥ 255 ॥

इस तन का दीवा करौ, बाती मेल्यूं जीवउं।

लोही सींचो तेल ज्यूं, कब मुख देख पठिउं ॥ 256 ॥

अंषड़ियां झाईं पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़या, राम पुकारि-पुकारि ॥ 257 ॥

सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं के चित्त ॥ 258 ॥

जो रोऊँ तो बल घटै, हँसो तो राम रिसाइ ।
मन ही माहिं बिसूरणा, ज्यूँ घुँण काठहिं खाइ ॥ 259 ॥

कबीर हँसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौ चित्त ।
बिन रोयां क्यूं पाइये, प्रेम पियारा मित्व ॥ 260 ॥

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवे ।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रौवे ॥ 261 ॥

परबति परबति मैं फिरया, नैन गंवाए रोइ ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवनि होइ ॥ 262 ॥

पूत पियारौ पिता कौं, गौहनि लागो घाइ ।
लोभ-मिठाई हाथ दे, आपण गयो भुलाइ ॥ 263 ॥

हाँसी खैलो हरि मिलै, कौण सहै षरसान ।
काम क्रोध त्रिष्णं तजै, तोहि मिलै भगवान ॥ 264 ॥
जा कारणि में ढूँढ़ती, सनमुख मिलिया आइ ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥ 265 ॥

पहुँचेंगे तब कहैगें, उमड़ैंगे उस ठांई ।
आजहूं बेरा समंद मैं, बोलि बिगू पैं काई ॥ 266 ॥

दीठा है तो कस कहूं, कह्मा न को पतियाइ ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तू हरिष-हरिष गुण गाइ ॥ 267 ॥

भारी कहौं तो बहुडरौं, हलका कहूं तौ झूठ ।
मैं का जाणी राम कूं नैनूं कबहूं न दीठ ॥ 268 ॥

कबीर एक न जाण्यां, तो बहु जाण्यां क्या होइ ।
एक तै सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥ 269 ॥

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥ 270 ॥

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउं ॥ 271 ॥

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुत जो भीत ।
जिन दिल बांध्या एक सूं, ते सुख सोवै निचींत ॥ 272 ॥

जब लग भगहित सकामता, सब लग निर्फल सेव ।
कहै कबीर वै क्यूँ मिलै निह्कामी निज देव ॥ 273 ॥

पतिबरता मैली भली, गले कांच को पोत ।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि को जोत ॥ 274 ॥

कामी अभी न भावई, विष ही कौं ले सोधि ।
कुबुध्दि न जीव की, भावै स्यंभ रहौ प्रमोथि ॥ 275 ॥
भगति बिगाड़ी कामियां, इन्द्री केरै स्वादि ।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥ 276 ॥

परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि ।
खूणैं बेसिर खाइय, परगट होइ दिवानि ॥ 277 ॥

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़िता खाहिं ।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं ॥ 288 ॥

ग्यानी मूल गँवाइया, आपण भये करना।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरना ॥ 289 ॥

कामी लज्रा ना करै, न माहें अहिलाद ।
नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगे स्वाद ॥ 290 ॥

कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि घरी खटाइ ।
राज-दुबारा यौं फिरै, ज्यँ हरिहाई गाइ ॥ 291 ॥

स्वामी हूवा सीतका, पैलाकार पचास ।
राम-नाम काठें रह्मा, करै सिषां की आंस ॥ 292 ॥

इहि उदर के कारणे, जग पाच्यो निस जाम ।
स्वामी-पणौ जो सिरि चढ़यो, सिर यो न एको काम ॥ 293 ॥

ब्राह्म्ण गुरु जगत् का, साधू का गुरु नाहिं ।
उरझि-पुरझि करि भरि रह्मा, चारिउं बेदा मांहि ॥ 294 ॥

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ॥ 295 ॥

कलि का स्वमी लोभिया, मनसा घरी बधाई ।
दैंहि पईसा ब्याज़ को, लेखां करता जाई ॥ 296 ॥
कबीर इस संसार कौ, समझाऊँ कै बार ।
पूँछ जो पकड़ै भेड़ की उतर या चाहे पार ॥ 297 ॥

तीरथ करि-करि जग मुवा, डूंधै पाणी न्हाइ ।
रामहि राम जपतंडां, काल घसीटया जाइ ॥ 298 ॥

चतुराई सूवै पढ़ी, सोइ पंजर मांहि ।
फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझे नाहिं ॥ 299 ॥

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं घ्रंम ।

कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रम ॥ 300 ॥

सबै रसाइण मैं क्रिया, हरि सा और न कोई ।
तिल इक घर मैं संचरे, तौ सब तन कंचन होई ॥ 301 ॥

हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार ।
मैमता घूमत रहै, नाहि तन की सार ॥ 302 ॥

कबीर हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥ 303 ॥

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आई ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाई ॥ 304 ॥

त्रिक्षणा सींची ना बुझै, दिन दिन बधती जाइ ।
जवासा के रुष ज्यूं, घण मेहां कुमिलाइ ॥ 305 ॥

कबीर सो घन संचिये, जो आगे कू होइ ।
सीस चढ़ाये गाठ की जात न देख्या कोइ ॥ 306 ॥

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड़ ।
सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड़ ॥ 307 ॥
कबीर माया पापरगी, फंध ले बैठी हाटि ।
सब जग तौ फंधै पड्या, गया कबीर काटि ॥ 308 ॥

कबीर जग की जो कहै, भौ जलि बूड़ै दास ।
पारब्रह्म पति छांड़ि करि, करै मानि की आस ॥ 309 ॥

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़या कलंक ।
और पखेरू पी गये, हंस न बौवे चंच ॥ 310 ॥

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह ।
जिहि धारि जिता बाधावणा, तिहीं तिता अंदोह ॥ 311 ॥

माया तजी तौ क्या भया, मानि तजि नही जाइ।
मानि बड़े मुनियर मिले, मानि सबनि को खाइ ॥ 312 ॥

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तुंड ।
जाने-बूझै कुछ नहीं, यौं ही अंधा रुंड ॥ 313 ॥

कबीर पढ़ियो दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ ।
बावन आषिर सोधि करि, ररै मर्मे चित्त लाइ ॥ 314 ॥

मैं जाण्यूँ पाढ़िबो भलो, पाढ़िबा थे भलो जोग ।
राम-नाम सूं प्रीती करि, भल भल नींयो लोग ॥ 315 ॥

पद गाएं मन हरषियां, साषी कह्मां अनंद ।
सो तत नांव न जाणियां, गल में पड़िया फंद ॥ 316 ॥

जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चाले चाल ।
पार ब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल ॥ 317 ॥

काजी-मुल्ला भ्रमियां, चल्या युनीं कै साथ ।
दिल थे दीन बिसारियां, करद लई जब हाथ ॥ 318 ॥

प्रेम-प्रिति का चालना, पहिरि कबीरा नाच ।
तन-मन तापर वारहुं, जो कोइ बौलौ सांच ॥ 319 ॥

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदै में सांच है, ताके हिरदै हरि आप ॥ 320 ॥

खूब खांड है खीचड़ी, माहि ष्डयाँ टुक कून ।
देख पराई चूपड़ी, जी ललचावे कौन ॥ 321 ॥

साईं सेती चोरियाँ, चोरा सेती गुझ ।
जाणैंगा रे जीवएगा, मार पड़ैगी तुझ ॥ 322 ॥

तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाय।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाय ॥ 323 ॥

जप-तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।
सूवै सैंबल सेविया, यौ जग चल्या निरास ॥ 324 ॥

जेती देखौ आत्म, तेता सालिगराम।
राधू प्रतषि देव है, नहीं पाथ सूँ काम ॥ 325 ॥

कबीर दुनिया देहुरै, सीत नवांवरग जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताहि सौ ल्यो लाइ ॥ 326 ॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछिरिग ॥ 327 ॥

मेरे संगी दोइ जरग, एक वैष्णौ एक राम।
वो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम ॥ 328 ॥

मथुरा जाउ भावे द्वारिका, भावै जाउ जगनाथ।
साथ-संगति हरि-भागति बिन-कछु न आवै हाथ ॥ 329 ॥
कबीर संगति साधु की, बेगि करीजै जाइ।
दुर्मति दूरि बंबाइसी, देसी सुमति बताइ ॥ 330 ॥

उज्ज्वल देखि न धीजिये, वग ज्यूं माडै ध्यान।
धीर बौठि चपेटसी, यूँ ले बूडै ग्यान ॥ 331 ॥

जेता मीठा बोलरगा, तेता साधन जारिग।
पहली था दिखाइ करि, उडै देसी आरिग ॥ 332 ॥

जानि बूझि सांचहिं तर्जे, करै झूठ सूँ नेहु।
ताकि संगति राम जी, सुपिने ही पिनि देहु ॥ 333 ॥

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तू बसै।
नहिंतर बेगि उठाइ, नित का गंजर को सहै ॥ 334 ॥

कबीरा बन-बन मे फिरा, कारणि आपणै राम।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सवेरे काम ॥ 335 ॥

कबीर मन पंषो भया, जहाँ मन वहाँ उड़ि जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥ 336 ॥

कबीरा खाई कोट कि, पानी पिवै न कोई।
जाइ मिलै जब गंग से, तब गंगोदक होइ ॥ 337 ॥

माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंख रही लपटाई।
ताली पीटै सिरि घुनै, मीठै बोई माइ ॥ 338 ॥

मूरख संग न कीजिये, लोहा जलि न तिराइ।
कदली-सीप-भुजगं मुख, एक बूंद तिहँ भाइ ॥ 339 ॥

हरिजन सेती रुसणा, संसारी सूँ हेत।
ते णर कदे न नीपजौ, ज्यूँ कालर का खेत ॥ 340 ॥
काजल केरी कोठड़ी, तैसी यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसिर निकसण हार ॥ 341 ॥

पाणी हीतै पातला, धुवाँ ही तै झीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीर कीन्ह ॥ 342 ॥

आसा का ईंधण करूँ, मनसा करूँ बिभूति।
जोगी फेरी फिल करूँ, यौं बिनना वो सूति ॥ 343 ॥

कबीर मारू मन कूँ, टूक-टूक है जाइ।
विव की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥ 353 ॥

कागद केरी नाव री, पाणी केरी गंग।

कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥ 354 ॥

मैं मन्ता मन मारि रे, घट ही माहैं घेरि ।
जबहीं चाले पीठि दे, अंकुस दै-दै फेरि ॥ 355 ॥

मनह मनोरथ छाँड़िये, तेरा किया न होइ ।
पाणी में घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ ॥ 356 ॥

एक दिन ऐसा होएगा, सब सूँ पड़े बिछोइ ।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ॥ 357 ॥

कबीर नौबत आपणी, दिन-दस लेहू बजाइ ।
ए पुर पाटन, ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ 358 ॥

जिनके नौबति बाजती, भैंगल बंधते बारि ।
एकै हरि के नाव बिन, गए जनम सब हारि ॥ 359 ॥

कहा कियौ हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ ।
इत के भये न उत के, चलित भूल गँवाइ ॥ 360 ॥
बिन रखवाले बाहिरा, चिड़िया खाया खेत ।
आधा-परधा ऊबरै, चेति सकै तो चैति ॥ 361 ॥

कबीर कहा गरबियौ, काल कहै कर केस ।
ना जाणै कहाँ मारिसी, कै धरि के परदेस ॥ 362 ॥

नान्हा कातौ चित्त दे, महँगे मोल बिलाइ ।
गाहक राजा राम है, और न नेडा आइ ॥ 363 ॥

उजला कपड़ा पहिरि करि, पान सुपारी खाहिं ।
एकै हरि के नाव बिन, बाँधे जमपुरि जाहिं ॥ 364 ॥

कबीर केवल राम की, तू जिनि छाँड़ै ओट ।
घण-अहरनि बिचि लौह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट ॥ 365 ॥

मैं-मैं बड़ी बलाइ है सकै तो निकसौ भाजि।
कब लग राखौ हे सखी, रुई लपेटी आगि ॥ 366 ॥

कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहरयां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देखि ॥ 367 ॥

माला पहिरै मनभुषी, ताथै कछू न होइ।
मन माला को फैरता, जग उजियारा सोइ ॥ 368 ॥

कैसो कहा बिगाड़िया, जो मुंडै सौ बार।
मन को काहे न मूंडिये, जामे विषम-विकार ॥ 369 ॥

माला पहरयां कुछ नहीं, भगति न आई हाथ।
माथौ मूँछ मुंडाइ करि, चल्या जगत् के साथ ॥ 370 ॥

बैसनो भया तौ क्या भया, बूझा नहीं बबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगहया अनेक ॥ 371 ॥
स्वाँग पहरि सो रहा भया, खाया-पीया खूंदि।
जिहि तेरी साधु नीकले, सो तो मेल्ही मूंदि ॥ 372 ॥

चतुराई हरि ना मिलै, ए बातां की बात।
एक निस प्रेही निरधार का गाहक गोपीनाथ ॥ 373 ॥

एष ले बूढ़ी पृथमी, झूठे कुल की लार।
अलष बिसारयो भेष में, बूड़े काली धार ॥ 374 ॥

कबीर हरि का भावता, झीणां पंजर।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मांस ॥ 375 ॥

सिंहों के लेहँड नहीं, हंसों की नहीं पाँत।
लालों की नहि बोरियाँ, साध न चलै जमात ॥ 376 ॥

गाँठी दाम न बांधई, नहिं नारी सों नेह ।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥ 377 ॥

निरबैरी निहकामता, साईं सेती नेह ।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग सह ॥ 378 ॥

जिहिं हिरदै हरि आइया, सो क्यूं छाना होइ ।
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥ 379 ॥

काम मिलावे राम कूं, जे कोई जाणै राखि ।
कबीर बिचारा क्या कहै, जाकि सुख्देव बोले साख ॥ 380 ॥

राम वियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हे कोई ।
तंबोली के पान ज्यूं, दिन-दिन पीला होई ॥ 381 ॥

पावक रूपी राम है, घटि-घटि रह्या समाइ ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथै घूवाँ है-है जाइ ॥ 382 ॥

फाटै दीदै में फिरौं, नजिर न आवै कोई ।
जिहि घटि मेरा साँइयाँ, सो क्यूं छाना होई ॥ 383 ॥

हैवर गैवर सघन धन, छत्रपती की नारि ।
तास पटेतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥ 384 ॥

जिहिं धरि साध न पूजि, हरि की सेवा नाहिं ।
ते घर भड़धट सारषे, भूत बसै तिन माहिं ॥ 385 ॥

कबीर कुल तौ सोभला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहिं कुल दास न उपजै, सो कुल आक-पलास ॥ 386 ॥

क्यूं नृप-नारी नींदिये, क्यूं पनिहारी कौ मान ।
वा माँग सँवारे पील कौ, या नित उठि सुमिरैराम ॥ 387 ॥

काबा फिर कासी भया, राम भया रे रहीम ।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥ 388 ॥

दुखिया भूखा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि ।
सदा अजंदी राम के, जिनि सुख-दुख गेल्हे दूरि ॥ 389 ॥

कबीर दुबिधा दूरि करि, एक अंग है लागि ।
यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥ 390 ॥

कबीर का तू चिंतवै, का तेरा च्यंत्या होइ ।
अण्च्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ ॥ 391 ॥

भूखा भूखा क्या करैं, कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़ि जिनि मुख यिका, सोई पूरण जोग ॥ 392 ॥

रचनाहार कूं चीन्हि लै, खैबे कूं कहा रोइ ।
दिल मंदि मैं पैसि करि, ताणि पछेवड़ा सोइ ॥ 393 ॥

कबीर सब जग हंडिया, मांदल कंधि चढ़ाइ ।
हरि बिन अपना कोउ नहीं, देखे ठोकि बनाइ ॥ 394 ॥

मांगण मरण समान है, बिरता बंचै कोई ।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मति रे मंगावे मोहि ॥ 395 ॥

मानि महतम प्रेम-रस गरवातण गुण नेह ।
ए सबहीं अहला गया, जबही कह्या कुछ देह ॥ 396 ॥

संत न बांधै गाठड़ी, पेट समाता-तेइ ।
साईं सूं सनमुख रहै, जहाँ माँगे तहां देइ ॥ 397 ॥

कबीर संसा कोउ नहीं, हरि सूं लाग्गा हेत ।
काम-क्रोध सूं झूझणा, चौडै मांड्या खेत ॥ 398 ॥

कबीर सोई सूरिमा, मन सूँ मांडै झूझ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥ 399 ॥

जिस मरनै यैं जग डरै, सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ पूरन परमानंद ॥ 400 ॥

अब तौ जूझया ही बरगै, मुडि चल्यां घर दूर।
सिर साहिबा कौ सौंपता, सोंच न कीजै सूर ॥ 401 ॥

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चाढ़ि असवार।
ग्यान खड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ॥ 402 ॥

कबीर हरि सब कूँ भजै, हरि कूँ भजै न कोइ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥ 403 ॥

सिर साटें हरि सेवेये, छांड़ि जीव की बाणि।
जे सिर दीया हरि मिलै, तब लगि हाणि न जाणि ॥ 404 ॥
जेते तारे रैणि के, तेतै बैरी मुझ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौ तुझ ॥ 405 ॥

आपा भेटियाँ हरि मिलै, हरि मेट् या सब जाइ।
अकथ कहाणी प्रेम की, कह्या न कोउ पत्याइ ॥ 406 ॥

जीवन थैं मरिबो भलौ, जो मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरै, जो कलि अजरावर होइ ॥ 407 ॥

कबीर मन मृतक भया, दुर्बल भया सरीर।
तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥ 408 ॥

रोड़ा है रहो बाट का, तजि पाषंड अभिमान।
ऐसा जे जन है रहै, ताहि मिलै भगवान ॥ 409 ॥

कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास।

कबीर ऐसैं होइ रक्षा, ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥ 410 ॥

अबरन कों का बरनिये, भोपै लख्या न जाइ ।
अपना बाना वाहिया, कहि-कहि थाके भाइ ॥ 411 ॥

जिसहि न कोई विसहि तू, जिस तू तिस सब कोई ।
दरिगह तेरी सांइयाँ, जा मरूम कोइ होइ ॥ 412 ॥

साँई मेरा वाणियां, सहति करै व्यौपार ।
बिन डांडी बिन पालड़ै तौले सब संसार ॥ 413 ॥

झल बावै झल दाहिनै, झलहि माहि त्योहार ।
आगै-पीछै झलमाई, राखै सिरजनहार ॥ 414 ॥

एसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोइ ।
औरन को सीतल करै, आपौ सीतल होइ ॥ 415 ॥
कबीर हरि कग नाव सूँ प्रीति रहै इकवार ।
तौ मुख तैं मोती झड़ै हीरे अन्त न पार ॥ 416 ॥

बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार ।
दुहुँ चूका रीता पड़ै वाकूँ वार न पार ॥ 417 ॥

कोई एक राखै सावधां, चेतनि पहरै जागि ।
बस्तर बासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि ॥ 418 ॥

बारी-बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत ।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत ॥ 419 ॥

पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि ।
जोड़ी बिछटी हंस की, पड़या बगां के साथि ॥ 420 ॥

निंदक नियारे राखिये, आंगन कुटि छबाय ।
बिन पाणी बिन सबुना, निरमल करै सुभाय ॥ 421 ॥

गोत्यंद के गुण बहुत हैं, लिखै जु हिरदै मांहि।
डरता पाणी जा पीऊं, मति वै धोये जाहि ॥ 422 ॥

जो ऊग्या सो आंथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥ 423 ॥

सीतलता तब जाणियें, समिता रहै समाइ।
पष छाँड़ै निरपष रहै, सबद न देष्या जाइ ॥ 424 ॥

खूंदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥ 425 ॥

नीर पियावत क्या फिरै, सायर घर-घर बारि।
जो त्रिषावन्त होइगा, सो पीवेगा झखमारि ॥ 426 ॥
कबीर सिरजन हार बिन, मेरा हित न कोइ।
गुण औगुण बिहणै नहीं, स्वारथ बँधी लोइ ॥ 427 ॥

हीरा परा बजार में, रहा छार लपिटाइ।
ब तक मूरख चलि गये पारखि लिया उठाइ ॥ 428 ॥

सुरति करौ मेरे साइयां, हम हैं भोजन माहिं।
आपे ही बहि जाहिंगे, जौ नहिं पकरौ बाहिं ॥ 429 ॥

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत ओगुन करौं, कैसे भावों तोहि ॥ 430 ॥

सब काहू का लीजिये, साचां सबद निहार।
पच्छपात ना कीजिये कहै कबीर विचार ॥ 431 ॥

॥ गुरु के विषय में दोहे ॥

गुरु सों ज्ञान जु लीजिये सीस दीजिए दान।

बहुतक भोदूँ बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥ 432 ॥

गुरु को कीजै दण्डव कोटि-कोटि परनाम ।
कीट न जाने भृगं को, गुरु करले आप समान ॥ 433 ॥

कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय ।
जनम-जनम का मोरचा, पल में डारे धोय ॥ 434 ॥

गुरु पारस को अन्तरो, जानत है सब सन्त ।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महन्त ॥ 435 ॥

गुरु की आज्ञा आवै, गुरु की आज्ञा जाय ।
कहैं कबीर सो सन्त हैं, आवागमन नशाय ॥ 436 ॥

जो गुरु बसै बनारसी, सीष समुन्दर तीर ।
एक पलक बिसरे नहीं, जो गुण होय शरीर ॥ 437 ॥

गुरु समान दाता नहीं, याचक सीष समान ।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्ही दान ॥ 438 ॥

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ॥ 439 ॥

गुरु को सिर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं ।
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोक भय नहिं ॥ 440 ॥

लच्छ कोष जो गुरु बसै, दीजै सुरति पठाय ।
शब्द तुरी बसवार है, छिन आवै छिन जाय ॥ 441 ॥

गुरु मूरति गति चन्द्रमा, सेवक नैन चकोर ।
आठ पहर निरखता रहे, गुरु मूरति की ओर ॥ 442 ॥

गुरु सों प्रीति निबाहिये, जेहि तत निबटै सन्त।
प्रेम बिना ढिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कन्त ॥ 443 ॥

गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै न मोष।
गुरु बिन लखै न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष ॥ 444 ॥

गुरु मूरति आगे खड़ी, दुनिया भेद कछु नाहिं।
उन्हीं कूँ परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाहिं ॥ 445 ॥

गुरु शरणागति छाड़ि के, करै भरौसा और।
सुख सम्पति की कह चली, नहीं परक ये ठौर ॥ 446 ॥

सिष खांडा गुरु भसकला, चढ़ै शब्द खरसान।
शब्द सहै सम्मुख रहै, निपजै शीष सुजान ॥ 447 ॥

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइये, सद्गुरु चरण निवास ॥ 448 ॥

अहं अग्नि निशि दिन जरै, गुरु सो चाहे मान।
ताको जम न्योता दिया, होउ हमार मेहमान ॥ 449 ॥

जैसी प्रीति कुटुम्ब की, तैसी गुरु सों होय।
कहैं कबीर ता दास का, पला न पकड़ै कोय ॥ 450 ॥

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव ॥ 451 ॥

पंडित पाढ़ि गुनि पचि मुये, गुरु बिना मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त शब्द परनाम ॥ 452 ॥

सोइ-सोइ नाच नचाइये, जेहि निबहे गुरु प्रेम।
कहै कबीर गुरु प्रेम बिन, कतहुँ कुशल नहि क्षेम ॥ 453 ॥

कहैं कबीर जजि भरम को, नन्हा है कर पीव।
तजि अहं गुरु चरण गहु, जमसों बाचै जीव ॥ 454 ॥

कोटिन चन्दा उगही, सूरज कोटि हज़ार।
तीमिर तौ नाशै नहीं, बिन गुरु घोर अंधार ॥ 455 ॥

तबही गुरु प्रिय बैन कहि, शीष बढ़ी चित प्रीत।
ते रहियें गुरु सनमुखाँ कबहूँ न दीजै पीठ ॥ 456 ॥

तन मन शीष निछावरै, दीजै सरबस प्रान।
कहैं कबीर गुरु प्रेम बिन, कितहूँ कुशल नहिं क्षेम ॥ 457 ॥

जो गुरु पूरा होय तो, शीषहि लेय निबाहि।
शीष भाव सुत्त जानिये, सुत ते श्रेष्ठ शिष आहि ॥ 458 ॥

भौ सागर की त्रास तेक, गुरु की पकड़ो बाँहि।
गुरु बिन कौन उबारसी, भौ जल धारा माँहि ॥ 459 ॥

करै दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सुदेय।
बलिहारी वे गुरुन की हंस उबारि जुलेय ॥ 460 ॥

सुनिये सन्तों साधु मिलि, कहहिं कबीर बुझाय।
जेहि विधि गुरु सों प्रीति छै कीजै सोई उपाय ॥ 461 ॥

अबुध सुबुध सुत मातु पितु, सबहि करै प्रतिपाल।
अपनी और निबाहिये, सिख सुत गहि निज चाल ॥ 462 ॥

लौ लागी विष भागिया, कालख डारी धोय।
कहैं कबीर गुरु साबुन सों, कोई इक ऊजल होय ॥ 463 ॥

राजा की चोरी करे, रहै रंग की ओट।
कहैं कबीर क्यों उबरै, काल कठिन की चोट ॥ 464 ॥

साबुन बिचारा क्या करे, गाँठे राखे मोय ।
जल सो अरसां नहिं, क्यों कर ऊजल होय ॥ 465 ॥

॥ सतगुरु के विषय मे दोहे ॥

सत्गुरु तो सतभाव है, जो अस भेद बताय ।
धन्य शीष धन भाग तिहि जो ऐसी सुधि पाय ॥ 466 ॥

सतगुरु शरण न आवहीं, फिर फिर होय अकाज ।
जीव खोय सब जायेंगे काल तिहूँ पुर राज ॥ 467 ॥

सतगुरु सम कोई नहीं सात दीप नौ खण्ड ।
तीन लोक न पाइये, अरु इक्कीस ब्रह्म्ण्ड ॥ 468 ॥

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय ।
भ्रम का भांड तोड़ि करि, रहै निराला होय ॥ 469 ॥

सतगुरु मिले जु सब मिले, न तो मिला न कोय ।
माता-पिता सुत बाँधवा ये तो घर घर होय ॥ 470 ॥

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव ।
कहै कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव ॥ 471 ॥

मनहिं दिया निज सब दिया, मन से संग शरीर ।
अब देवे को क्या रहा, यों कयि कहहिं कबीर ॥ 472 ॥

सतगुरु को माने नही, अपनी कहै बनाय ।
कहे कबीर क्या कीजिये, और मता मन जाय ॥ 473 ॥

जग में युक्ति अनूप है, साधु संग गुरु ज्ञान ।
तामें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान ॥ 474 ॥

कबीर समूझा कहत है, पानी थाह बताय ।
ताकूँ सतगुरु का करे, जो औघट डूबे जाय ॥ 475 ॥

बिन सतगुरु उपदेश, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे ।
ब्रह्मा-विष्णु, महेश और सकल जिव को गिनै ॥ 476 ॥

केते पढ़ि गुनि पचि भुए, योग यज्ञ तप लाय ।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करे उपाय ॥ 477 ॥

डूबा औघट न तरै, मोहिं अंदेशा होय ।
लोभ नदी की धार में, कहा पड़ो नर सोइ ॥ 478 ॥

सतगुरु खोजो सन्त, जोव काज को चाहहु ।
मेटो भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥ 479 ॥

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेश है ।
होये सब जिव काज, निश्चय करि परतीत करू ॥ 480 ॥

यह सतगुरु उपदेश है, जो मन माने परतीत ।
करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भव जल जीत ॥ 481 ॥

जग सब सागर मोहिं, कहु कैसे बूड़त तेरे ।
गहु सतगुरु की बाहिं जो जल थल रक्षा करै ॥ 482 ॥

॥ गुरु पारख पर दोहे ॥

जानीता बूझा नहीं बूझि किया नहीं गौन ।
अन्धे को अन्धा मिला, राह बतावे कौन ॥ 483 ॥

जाका गुरु है आँधरा, चेला खरा निरन्ध ।
अन्धे को अन्धा मिला, पड़ा काल के फन्द ॥ 484 ॥

गुरु लोभ शिष लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाँव ॥ 485 ॥

आगे अंधा कूप में, दूजे लिया बुलाय।
दोनों बूडछे बापुरे, निकसे कौन उपाय ॥ 486 ॥

गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिर फिर गोता खाहि ॥ 487 ॥

पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिनि के, घर घर माँगी भीख ॥ 488 ॥

कबीर गुरु है घाट का, हाँटू बैठा चेल।
मूड़ मुड़ाया साँझ कूँ गुरु सबेरे ठेल ॥ 489 ॥

गुरु-गुरु में भेद है, गुरु-गुरु में भाव।
सोइ गुरु नित बन्दिये, शब्द बतावे दाव ॥ 490 ॥

जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय ॥ 491 ॥

झूठे गुरु के पक्ष की, तजत न कीजै वार।
द्वार न पावै शब्द का, भटके बारम्बार ॥ 492 ॥

सद्गुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाहिं।
दरिया सो न्यारा रहे, दीसे दरिया माहि ॥ 493 ॥

कबीर बेड़ा सार का, ऊपर लादा सार।
पापी का पापी गुरु, यो बूढ़ा संसार ॥ 494 ॥

जो गुरु को तो गम नहीं, पाहन दिया बताय।
शिष शोधे बिन सेइया, पार न पहुँचा जाए ॥ 495 ॥

सोचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय।
चंचल से निश्चल भया, नहिं आवै नहीं जाय ॥ 496 ॥

गु अँधियारी जानिये, रु कहिये परकाश।
मिटि अज्ञाने ज्ञान दे, गुरु नाम है तास ॥ 497 ॥

गुरु नाम है गम्य का, शीष सीख ले सोय।
बिनु पद बिनु मरजाद नर, गुरु शीष नहिं कोय ॥ 498 ॥

गुरुवा तो घर फिरे, दीक्षा हमारी लेह।
कै बूड़ौ कै ऊबरो, टका परदानी देह ॥ 499 ॥

गुरुवा तो सस्ता भया, कौड़ी अर्थ पचास।
अपने तन की सुधि नहीं, शिष्य करन की आस ॥ 500 ॥

जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय।
कीच-कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय ॥ 501 ॥

गुरु मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हरष शोष व्यापे नहीं, तब गुरु आपे आप ॥ 502 ॥

यह तन विषय की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान ॥ 503 ॥

बँधे को बँधा मिला, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबन्ध की पल में लेय छुड़ाय ॥ 504 ॥

गुरु बिचारा क्या करै, शब्द न लागै अंग।
कहैं कबीर मैक्री गजी, कैसे लागू रंग ॥ 505 ॥

गुरु बिचारा क्या करे, ह्रदय भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ा पथर न भीजी कोर ॥ 506 ॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, देता हूँ हेला।
गुरु की करनी गुरु जाने चेला की चेला ॥ 507 ॥

॥ गुरु शिष्य के विषय मे दोहे ॥

शिष्य पुजै आपना, गुरु पूजै सब साध।
कहैं कबीर गुरु शीष को, मत है अगम अगाध ॥ 508 ॥

हिरदे ज्ञान न उपजै, मन परतीत न होय।
ताके सद्गुरु कहा करें, घनघसि कुल्हरन होय ॥ 509 ॥

ऐसा कोई न मिला, जासू कहूँ निसंक।
जासो हिरदा की कहूँ, सो फिर मारे डंक ॥ 510 ॥

शिष किरपिन गुरु स्वारथी, किले योग यह आय।
कीच-कीच के दाग को, कैसे सके छुड़ाय ॥ 511 ॥

स्वामी सेवक होय के, मनही में मिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के माय ॥ 512 ॥

गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानि ॥ 513 ॥

सत को खोजत मैं फिरूँ, सतिया न मिलै न कोय।
जब सत को सतिया मिले, विष तजि अमृत होय ॥ 514 ॥

देश-देशान्तर मैं फिरूँ, मानुष बड़ा सुकाल।
जा देखै सुख उपजै, वाका पड़ा दुकाल ॥ 515 ॥

॥ भिक्ति के विषय मे दोहे ॥

कबीर गुरु की भक्ति बिन, राजा ससभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥ 516 ॥

कबीर गुरु की भक्ति बिन, नारी कूकरी होय।
गली-गली भूँकत फिरै, टूक न डारै कोय ॥ 517 ॥

जो कामिनि परदै रहे, सुनै न गुरुगुण बात।
सो तो होगी कूकरी, फिरै उघारे गात ॥ 518 ॥

चौंसठ दीवा जोय के, चौदह चन्दा माहिं।
तेहि घर किसका चाँदना, जिहि घर सतगुरु नाहिं ॥ 519 ॥

हरिया जाने रूखाड़ा, उस पानी का नेह।
सूखा काठ न जानिहै, कितहूँ बूड़ा गेह ॥ 520 ॥

झिरमिर झिरमिर बरसिया, पाहन ऊपर मेह।
माटी गलि पानी भई, पाहन वाही नेह ॥ 521 ॥

कबीर ह्रदय कठोर के, शब्द न लागे सार।
सुधि-सुधि के हिरदे विधे, उपजै ज्ञान विचार ॥ 522 ॥

कबीर चन्दर के भिरै, नीम भी चन्दन होय।
बूड़यो बाँस बड़ाइया, यों जनि बूड़ो कोय ॥ 523 ॥

पशुआ सों पालो परो, रहू-रहू हिया न खीज।
ऊसर बीज न उगसी, बोवै दूना बीज ॥ 524 ॥

कंचन मेरू अरपही, अरपैं कनक भण्डार।
कहैं कबीर गुरु बेमुखी, कबहूँ न पावै पार ॥ 525 ॥

साकट का मुख बिम्ब है निकसत बचन भुवंग।
ताकि औषण मौन है, विष नहिं व्यापै अंग ॥ 526 ॥

शुकदेव सरीखा फेरिया, तो को पावे पार।
बिनु गुरु निगुरा जो रहे, पड़े चौरासी धार ॥ 527 ॥

कबीर लहरि समुन्द्र की, मोती बिखरे आय।
बगुला परख न जानई, हंस चुनि-चुनि खाय ॥ 528 ॥

साकट कहा न कहि चलै, सुनहा कहा न खाय।
जो कौवा मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नशाय ॥ 529 ॥

साकट मन का जेवरा, भजै सो करराय।
दो अच्छर गुरु बहिरा, बाधा जमपुर जाय ॥ 530 ॥

कबीर साकट की सभा, तू मति बैठे जाय।
एक गुवाड़े कदि बड़ै, रोज गदहरा गाय ॥ 531 ॥

संगत सोई बिगुर्चई, जो है साकट साथ।
कंचन कटोरा छाड़ि के, सनहक लीन्ही हाथ ॥ 532 ॥

साकट संग न बैठिये करन कुबेर समान।
ताके संग न चलिये, पड़ि हैं नरक निदान ॥ 533 ॥

टेक न कीजै बावरे, टेक माहि है हानि।
टेक छाड़ि मानिक मिलै, सत गुरु वचन प्रमानि ॥ 534 ॥

साकट सूकर कीकरा, तीनों की गति एक है।
कोटि जतन परमोधिये, तऊ न छाड़े टेक ॥ 535 ॥

निगुरा ब्राह्म्ण नहिं भला, गुरुमुख भला चमार।
देवतन से कुत्ता भला, नित उठि भूँके द्वार ॥ 536 ॥

हरिजन आवत देखिके, मोहड़ो सूखि गयो।
भाव भक्ति समझयो नहीं, मूरख चूकि गयो ॥ 537 ॥

खसम कहावै बैरनव, घर में साकट जोय।
एक धरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय ॥ 538 ॥

घर में साकट स्त्री, आप कहावे दास।
वो तो होगी शूकरी, वो रखवाला पास ॥ 539 ॥

आँखों देखा घी भला, न मुख मेला तेल।
साधु सो झगड़ा भला, ना साकट सों मेल ॥ 540 ॥

कबीर दर्शन साधु का, बड़े भाग दरशाय।
जो होवै सूली सजा, काँटे ई टरि जाय ॥ 541 ॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन साधु मिलाय।
अंक भरे भारि भेटिये, पाप शरीर जाय ॥ 542 ॥

कबीर दर्शन साधु के, करत न कीजै कानि।
ज्यों उद्य्म से लक्ष्मी, आलस मन से हानि ॥ 543 ॥

कई बार नाहिं कर सके, दोय बखत करिलेय।
कबीर साधु दरश ते, काल दगा नहिं देय ॥ 544 ॥

दूजे दिन नहिं करि सके, तीजे दिन करू जाय।
कबीर साधु दरश ते मोक्ष मुक्ति फन पाय ॥ 545 ॥

तीजे चौथे नहिं करे, बार-बार करू जाय।
यामें विलंब न कीजिये, कहैं कबीर समुझाय ॥ 546 ॥

दोय बखत नहिं करि सके, दिन में करूँ इक बार।
कबीर साधु दरश ते, उतरैं भव जल पार ॥ 547 ॥

बार-बार नहिं करि सके, पाख-पाख करिलेय।
कहैं कबीरन सो भक्त जन, जन्म सुफल करि लेय ॥ 548 ॥

पाख-पाख नहिं करि सकै, मास मास करू जाय।
यामें देर न लाइये, कहैं कबीर समुदाय ॥ 549 ॥

बरस-बरस नाहिं करि सकै ताको लागे दोष।
कहै कबीर वा जीव सो, कबहु न पावै योष ॥ 550 ॥

छठे मास नहिं करि सके, बरस दिना करि लेय।
कहैं कबीर सो भक्तजन, जमहिं चुनौती देय ॥ 551 ॥

मास-मास नहिं करि सकै, उठे मास अलबत्त।
यामें ढील न कीजिये, कहै कबीर अविगत्त ॥ 552 ॥

मात-पिता सुत इस्तरी आलस्य बन्धू कानि।
साधु दरश को जब चलैं, ये अटकावै आनि ॥ 553 ॥

साधु चलत रो दीजिये, कीजै अति सनमान।
कहैं कबीर कछु भेट धरूँ, अपने बित्त अनुमान ॥ 554 ॥

इन अटकाया न रुके, साधु दरश को जाय।
कहै कबीर सोई सन्तजन, मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥ 555 ॥

खाली साधु न बिदा करूँ, सुन लीजै सब कोय।
कहै कबीर कछु भेंट धरूँ, जो तेरे घर होय ॥ 556 ॥

सुनिये पार जो पाइया, छाजन भोजन आनि।
कहै कबीर संतन को, देत न कीजै कानि ॥ 557 ॥

कबीर दरशन साधु के, खाली हाथ न जाय।
यही सीख बुध लीजिए, कहै कबीर बुझाय ॥ 558 ॥

टूका माही टूक दे, चीर माहि सो चीर।
साधु देत न सकुचिये, यों कशि कहहिं कबीर ॥ 559 ॥

कबीर लौंग-इलायची, दातुन, माटी पानि ।
कहै कबीर सन्तन को, देत न कीजै कानि ॥ 560 ॥

साधु आवत देखिकर, हँसी हमारी देह ।
माथा का ग्रह उतरा, नैनन बढ़ा सनेह ॥ 561 ॥

साधु शब्द समुद्र है, जामें रत्न भराय ।
मन्द भाग मट्टी भरे, कंकर हाथ लगाय ॥ 562 ॥

साधु आया पाहुना, माँगे चार रतन ।
धूनी पानी साथरा, सरधा सेती अन्न ॥ 563 ॥

साधु आवत देखिके, मन में करै भरोर ।
सो तो होसी चूह्ला, बसै गाँव की ओर ॥ 564 ॥

साधु मिलै यह सब हलै, काल जाल जम चोट ।
शीश नवावत ढ़हि परै, अघ पावन को पोट ॥ 565 ॥

साधु बिरछ सतज्ञान फल, शीतल शब्द विचार ।
जग में होते साधु नहिं, जर भरता संसार ॥ 566 ॥

साधु बड़े परमारथी, शीतल जिनके अंग ।
तपन बुझावै ओर की, देदे अपनो रंग ॥ 567 ॥

आवत साधु न हरखिया, जात न दीया रोय ।
कहै कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥ 568 ॥

छाजन भोजन प्रीति सो, दीजै साधु बुलाय ।
जीवन जस है जगन में, अन्त परम पद पाय ॥ 569 ॥

सरवर तरवर सन्त जन, चौथा बरसे मेह ।
परमारथ के कारने, चारों धारी देह ॥ 570 ॥

बिरछा कबहुँ न फल भखै, नदी न अंचय नीर।
परमारथ के कारने, साधु धरा शरीर ॥ 571 ॥

सुख देवै दुख को हरे, दूर करे अपराध।
कहै कबीर वह कब मिले, परम सनेही साध ॥ 572 ॥

साधुन की झुपड़ी भली, न साकट के गाँव।
चंदन की कुटकी भली, ना बूबल बनराव ॥ 573 ॥

कह अकाश को फेर है, कह धरती को तोल।
कहा साध की जाति है, कह पारस का मोल ॥ 574 ॥

हयबर गयबर सधन धन, छत्रपति की नारि।
तासु पटतरा न तुले, हरिजन की परिहारिन ॥ 575 ॥

क्यों नृपनारि निन्दिये, पनिहारी को मान।
वह माँग सँवारे पीववहित, नित वह सुमिरे राम ॥ 576 ॥

जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं विलाप।
जो सुख सहजै पाईया, सन्तों संगति आप ॥ 577 ॥

साधु सिद्ध बहु अन्तरा, साधु मता परचण्ड।
सिद्ध जु वारे आपको, साधु तारि नौ खण्ड ॥ 578 ॥

कबीर शीतल जल नहीं, हिम न शीतल होय।
कबीर शीतल सन्त जन, राम सनेही सोय ॥ 579 ॥

आशा वासा सन्त का, ब्रह्मा लखै न वेद।
षट दर्शन खटपट करै, बिरला पावै भेद ॥ 580 ॥

कोटि-कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करु धाय।
जब लग साधु न सेवई, तब लग काचा काम ॥ 581 ॥

वेद थके, ब्रह्मा थके, याके सेस महेस ।
गीता हूँ कि गत नहीं, सन्त किया परवेस ॥ 582 ॥

सन्त मिले जानि बीछुरों, बिछुरों यह मम प्रान ।
शब्द सनेही ना मिले, प्राण देह में आन ॥ 583 ॥

साधु ऐसा चाहिए, दुखै दुखावे नाहिं ।
पान फूल छेड़े नहीं, बसै बगीचा माहिं ॥ 584 ॥

साधु कहावन कठिन है, ज्यों खांड़े की धार ।
डगमगाय तो गिर पड़े निहचल उतरे पार ॥ 585 ॥

साधु कहावत कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर ।
चढ़े तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥ 586 ॥

साधु चाल जु चालई, साधु की चाल ।
बिन साधन तो सुधि नाहिं साधु कहाँ ते होय ॥ 587 ॥

साधु सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥ 588 ॥

साधु भौरा जग कली, निशि दिन फिरै उदास ।
टुक-टुक तहाँ विलम्बिया, जहँ शीतल शब्द निवास ॥ 589 ॥

साधू जन सब में रमैं, दुख न काहू देहि ।
अपने मत गाड़ा रहै, साधुन का मत येहि ॥ 590 ॥

साधु सती और सूरमा, राखा रहै न ओट ।
माथा बाँधि पताक सों, नेजा घालैं चोट ॥ 591

साधु-साधु सब एक है, जस अफीम का खेत ।
कोई विवेकी लाल है, और सेत का सेत ॥ 592 ॥

साधु सती औ सिं को, ज्यों लेघन त्यौं शोभ।
सिंह न मारे मेढ़का, साधु न बाँधै लोभ॥ 593॥

साधु तो हीरा भया, न फूटै धन खाय।
न वह बिनभ कुम्भ ज्यों ना वह आवै जाय॥ 594॥

साधू-साधू सबहीं बड़े, अपनी-अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथे के मौर॥ 595॥

सदा रहे सन्तोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आश एक गुरुदेव की, और चित्त विचार॥ 596॥

दुख-सुख एक समान है, हरष शोक नहिं व्याप।
उपकारी निहकामता, उपजै छोह न ताप॥ 597॥

सदा कृपालु दुःख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, सिंह रहित तु होय॥ 598॥

साधु ऐसा चाहिए, जाके ज्ञान विवेक।
बाहर मिलते सों मिलें, अन्तर सबसों एक॥ 599॥

सावधान और शीलता, सदा प्रफुल्लित गात।
निर्विकार गम्भीर मत, धीरज दया बसात॥ 600॥

निबैंरी निहकामता, स्वामी सेती नेह।
विषया सो न्यारा रहे, साधुन का मत येह॥ 601॥

मानपमान न चित धरै, औरन को सनमान।
जो कोर्ठ आशा करै, उपदेशै तेहि ज्ञान॥ 602॥

और देव नहिं चित्त बसै, मन गुरु चरण बसाय।
स्वल्पाहार भोजन करूँ, तृष्णा दूर पराय॥ 603॥

जौन चाल संसार की जौ साधु को नाहिं ।
डिंभ चाल करनी करे, साधु कहो मत ताहिं ॥ 604 ॥

इन्द्रिय मन निग्रह करन, हिरदा कोमल होय ।
सदा शुद्ध आचरण में, रह विचार में सोय ॥ 605 ॥

शीलवन्त दृढ़ ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
लज्ञावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥ 606 ॥

कोई आवै भाव ले, कोई अभाव लै आव ।
साधु दोऊ को पोषते, भाव न गिनै अभाव ॥ 607 ॥

सन्त न छाड़ै सन्तता, कोटिक मिलै असंत ।
मलय भुवंगय बेधिया, शीतलता न तजन्त ॥ 608 ॥

कमल पत्र हैं साधु जन, बसैं जगत के माहिं ।
बालक केरि धाय ज्यों, अपना जानत नाहिं ॥ 609 ॥

बहता पानी निरमला, बन्दा गन्दा होय ।
साधू जन रमा भला, दाग न लागै कोय ॥ 610 ॥

बँधा पानी निरमला, जो टूक गहिरा होय ।
साधु जन बैठा भला, जो कुछ साधन होय ॥ 611 ॥

एक छाड़ि पय को गहैं, ज्यों रे गऊ का बच्छ ।
अवगुण छाड़ै गुण गहै, ऐसा साधु लच्छ ॥ 612 ॥

जौन भाव उपर रहै, भितर बसावै सोय ।
भीतर और न बसावई, ऊपर और न होय ॥ 613 ॥

उड़गण और सुधाकरा, बसत नीर के संग ।
यों साधू संसार में, कबीर फड़त न फंद ॥ 614 ॥

तन में शीतल शब्द है, बोले वचन रसाल।
कहैं कबीर ता साधु को, गंजि सकै न काल ॥ 615 ॥

तूटै बरत आकाश सौं, कौन सकत है झेल।
साधु सती और सूर का, अनी ऊपर का खेल ॥ 616 ॥

ढोल दमामा गड़झड़ी, सहनाई और तूर।
तीनों निकसि न बाहुरैं, साधु सती औ सूर ॥ 617 ॥

आज काल के लोग हैं, मिलि कै बिछुरी जाहिं।
लाहा कारण आपने, सौगन्ध राम कि खाहिं ॥ 618 ॥

जुवा चोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नारि।
जो चाहै दीदार को, इतनी वस्तु निवारि ॥ 619 ॥

कबीर मेरा कोइ नहीं, हम काहू के नाहिं।
पारै पहुँची नाव ज्यों, मिलि कै बिछुरी जाहिं ॥ 620 ॥

सन्त समागम परम सुख, जान अल्प सुख और।
मान सरोवर हंस है, बगुला ठौरे ठौर ॥ 621 ॥

सन्त मिले सुख ऊपजै दुष्ट मिले दुख होय।
सेवा कीजै साधु की, जन्म कृतारथ होय ॥ 622 ॥

संगत कीजै साधु की कभी न निष्फल होय।
लोहा पारस परस ते, सो भी कंचन होय ॥ 623 ॥

मान नहीं अपमान नहीं, ऐसे शीतल सन्त।
भव सागर से पार हैं, तोरे जम के दन्त ॥ 624 ॥

दया गरीबी बन्दगी, समता शील सुभाव।
येते लक्षण साधु के, कहैं कबीर सतभाव ॥ 625 ॥

सो दिन गया इकारथे, संगत भई न सन्त ।
ज्ञान बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भटकन्त ॥ 626 ॥

आशा तजि माया तजै, मोह तजै अरू मान ।
हरष शोक निन्दा तजै, कहैं कबीर सन्त जान ॥ 627 ॥

आसन तो इकान्त करैं, कामिनी संगत दूर ।
शीतल सन्त शिरोमनी, उनका ऐसा नूर ॥ 628 ॥

यह कलियुग आयो अबै, साधु न जाने कोय ।
कामी क्रोधी मस्खरा, तिनकी पूजा होय ॥ 629 ॥

कुलवन्ता कोटिक मिले, पण्डित कोटि पचीस ।
सुपच भक्त की पनहि में, तुलै न काहू शीश ॥ 630 ॥

साधु दरशन महाफल, कोटि यज्ञ फल लेह ।
इक मन्दिर को का पड़ी, नगर शुद्ध करिलेह ॥ 631 ॥

साधु दरश को जाइये, जेता धरिये पाँय ।
डग-डग पे असमेध जग, है कबीर समुझाय ॥ 632 ॥

सन्त मता गजराज का, चालै बन्धन छोड़ ।
जग कुत्ता पीछे फिरैं, सुनै न वाको सोर ॥ 633 ॥

आज काल दिन पाँच में, बरस पाँच जुग पंच ।
जब तब साधू तारसी, और सकल पर पंच ॥ 634 ॥

साधु ऐसा चाहिए, जहाँ रहै तहँ गैब ।
बानी के बिस्तार में, ताकूँ कोटिक ऐब ॥ 635 ॥

सन्त होत हैं, हेत के, हेतु तहाँ चलि जाय ।
कहैं कबीर के हेत बिन, गरज कहाँ पतियाय ॥ 636 ॥

हेत बिना आवै नहीं, हेत तहाँ चलि जाय।
कबीर जल और सन्तजन, नवैं तहाँ ठहराय ॥ 637 ॥

साधु-ऐसा चाहिए, जाका पूरा मंग।
विपत्ति पड़े छाड़ै नहीं, चढ़े चौगुना रंग ॥ 638 ॥

सन्त सेव गुरु बन्दगी, गुरु सुमिरन वैराग।
ये ता तबही पाइये, पूरन मस्तक भाग ॥ 639 ॥

॥ भेष के विषय मे दोहे ॥

चाल बकुल की चलत हैं, बहुरि कहावै हंस।
ते मुक्ता कैसे चुंगे, पड़े काल के फंस ॥ 640 ॥

बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोले सियार की, कुत्ता खवै फाल ॥ 641 ॥

साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भंगार ॥ 642 ॥

तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ 643 ॥

जौ मानुष गृह धर्म युत, राखै शील विचार।
गुरुमुख बानी साधु संग, मन वच, सेवा सार ॥ 644 ॥

शब्द विचारे पथ चलै, ज्ञान गली दे पाँव।
क्या रमता क्या बैठता, क्या गृह कंदला छाँव ॥ 645 ॥

गिरही सुवै साधु को, भाव भक्ति आनन्द।
कहैं कबीर बैरागी को, निरबानी निरदुन्द ॥ 646 ॥

पाँच सात सुमता भरी, गुरु सेवा चित लाय।

तब गुरु आज्ञा लेय के, रहे देशान्तर जाय ॥ 647 ॥

गुरु के सनमुख जो रहै, सहै कसौटी दुख ।
कहैं कबीर तो दुख पर वारों, कोटिक सूख ॥ 648 ॥

मन मैला तन ऊजरा, बगुला कपटी अंग ।
तासों तो कौवा भला, तन मन एकहि रंग ॥ 649 ॥

भेष देख मत भूलिये, बूझि लीजिये ज्ञान ।
बिना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहिचान ॥ 650 ॥

कवि तो कोटि-कोटि हैं, सिर के मुड़े कोट ।
मन के कूड़े देखि करि, ता संग लीजै ओट ॥ 651 ॥

बोली ठोली मस्खरी, हँसी खेल हराम ।
मद माया और इस्तरी, नहिं सन्तन के काम ॥ 652 ॥

फाली फूली गाडरी, ओढ़ि सिंह की खाल ।
साँच सिंह जब आ मिले, गाडर कौन हवाल ॥ 653 ॥

बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार ।
दोऊ चूकि खाली पड़े, ताको वार न पार ॥ 654 ॥

धारा तो दोनों भली, बिरही के बैराग ।
गिरही दासातन करे बैरागी अनुराग ॥ 655 ॥

घर में रहै तो भक्ति करूँ, ना तरू करू बैराग ।
बैरागी बन्ध करै, ताका बड़ा अभाग ॥ 656 ॥

॥ भीख के विषय मे दोहे ॥

उदर समाता माँगि ले, ताको नाहिं दोष ।

कहैं कबीर अधिका गहै, ताकि गति न मोष ॥ 657 ॥

अजहूँ तेरा सब मिटैं, जो मानै गुरु सीख ।
जब लग तू घर में रहै, मति कहुँ माँगे भीख ॥ 658 ॥

माँगन गै सो भर रहै, भरे जु माँगन जाहिं ।
तिनते पहिले वे मरे, होत करत है नाहिं ॥ 659 ॥

माँगन-मरण समान है, तोहि दई मैं सीख ।
कहैं कबीर समझाय के, मति कोई माँगे भीख ॥ 660 ॥

उदर समाता अन्न ले, तनहिं समाता चीर ।
अधिकहिं संग्रह ना करै, तिसका नाम फकीर ॥ 661 ॥

आब गया आदर गया, नैनन गया सनेह ।
यह तीनों तब ही गये, जबहिं कहा कुछ देह ॥ 662 ॥

सहत मिलै सो दूध है, माँगि मिलै सा पानि ।
कहैं कबीर वह रक्त है, जामें एंचातानि ॥ 663 ॥

अनमाँगा उत्तम कहा, मध्यम माँगि जो लेय ।
कहैं कबीर निकृष्टि सो, पर धर धरना देय ॥ 664 ॥

अनमाँगा तो अति भला, माँगि लिया नहिं दोष ।
उदर समाता माँगि ले, निश्च्य पावै योष ॥ 665 ॥

॥ संगति पर दोहे ॥

कबीरा संगत साधु की, नित प्रति कीर्जे जाय ।
दुरमति दूर बहावसी, देशी सुमति बताय ॥ 666 ॥

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध ।

कबीर संगत साधु की, करै कोटि अपराध ॥ 667 ॥

कबिरा संगति साधु की, जो करि जाने कोय।
सकल बिरछ चन्दन भये, बांस न चन्दन होय ॥ 668 ॥

मन दिया कहुँ और ही, तन साधुन के संग।
कहैं कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥ 669 ॥

साधुन के सतसंग से, थर-थर काँपे देह।
कबहुँ भाव कुभाव ते, जनि मिटि जाय सनेह ॥ 670 ॥

साखी शब्द बहुतै सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति सो सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग ॥ 671 ॥

साध संग अन्तर पड़े, यह मति कबहु न होय।
कहैं कबीर तिहु लोक में, सुखी न देखा कोय ॥ 672 ॥

गिरिये परबत सिखर ते, परिये धरिन मंझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ो काली धार ॥ 673 ॥

संत कबीर गुरु के देश में, बसि जावै जो कोय।
कागा ते हंसा बनै, जाति बरन कुछ खोय ॥ 674 ॥

भुवंगम बास न बेधई, चन्दन दोष न लाय।
सब अंग तो विष सों भरा, अमृत कहाँ समाय ॥ 675 ॥

तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काची सरसों पेरिकै, खरी भया न तेल ॥ 676 ॥

काचा सेती मति मिलै, पाका सेती बान।
काचा सेती मिलत ही, है तन धन की हान ॥ 677 ॥

कोयला भी हो ऊजला, जरि बरि है जो सेव।

मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालर का खेत ॥ 678 ॥

मूरख को समुझावते, ज्ञान गाँठि का जाय।
कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥ 679 ॥

ज्ञानी को ज्ञानी मिलै, रस की लूटम लूट।
ज्ञानी को आनी मिलै, हौवै माथा कूट ॥ 680॥

साखी शब्द बहुतक सुना, मिटा न मन क मोह।
पारस तक पहुँचा नहीं, रहा लोह का लोह ॥ 681 ॥

ब्राह्मण केरी बेटिया, मांस शराब न खाय।
संगति भई कलाल की, मद बिना रहा न जाए ॥ 682 ॥

जीवन जीवन रात मद, अविचल रहै न कोय।
जु दिन जाय सत्संग में, जीवन का फल सोय ॥ 683 ॥

दाग जु लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परमोधिये, कागा हंस न होय ॥ 684 ॥

जो छोड़े तो आँधरा, खाये तो मरि जाय।
ऐसे संग छछून्दरी, दोऊ भाँति पछिताय ॥ 685 ॥

प्रीति कर सुख लेने को, सो सुख गया हिराय।
जैसे पाइ छछून्दरी, पकड़ि साँप पछिताय ॥ 686 ॥

कबीर विषधर बहु मिले, मणिधर मिला न कोय।
विषधर को मणिधर मिले, विष तजि अमृत होय ॥ 687 ॥

सज्ञन सों सज्ञन मिले, होवे दो दो बात।
गहदा सो गहदा मिले, खावे दो दो लात ॥ 688 ॥

तरुवर जड़ से काटिया, जबै सम्हारो जहाज।

तारै पर बोरे नहीं, बाँह गहे की लाज ॥ 689 ॥

मैं सोचों हित जानिके, कठिन भयो है काठ।
ओछी संगत नीच की सरि पर पाड़ी बाट ॥ 690 ॥

लकड़ी जल डूबै नहीं, कहो कहाँ की प्रीति।
अपनी सीची जानि के, यही बड़ने की रीति ॥ 691 ॥

साधू संगत परिहरै, करै विषय का संग।
कूप खनी जल बावरे, त्याग दिया जल गंग ॥ 692 ॥

संगति ऐसी कीजिये, सरसा नर सो संग।
लर-लर लोई हेत है, तऊ न छौड़ रंग ॥ 693 ॥

तेल तिली सौ ऊपजै, सदा तेल को तेल।
संगति को बेरो भयो, ताते नाम फुलेल ॥ 694 ॥

साधु संग गुरु भक्ति अरू, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय।
ओछी संगत खर शब्द रू, घटत-घटत घटि जाय ॥ 695 ॥

संगत कीजै साधु की, होवे दिन-दिन हेत।
साकुट काली कामली, धोते होय न सेत ॥ 696 ॥

चर्चा करूँ तब चौहटे, ज्ञान करो तब दोय।
ध्यान धरो तब एकिला, और न दूजा कोय ॥ 697 ॥

सन्त सुरसरी गंगा जल, आनि पखारा अंग।
मैले से निरमल भये, साधू जन को संग ॥ 698 ॥

॥ सेवक पर दोहे ॥

सतगुरु शब्द उलंघ के, जो सेवक कहूँ जाय।

जहाँ जाय तहँ काल है, कहैं कबीर समझाय ॥ 699 ॥

तू तू करूं तो निकट है, दुर-दुर करू हो जाय।
जों गुरु राखै त्यों रहै, जो देवै सो खाय ॥ 700 ॥

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहैं कबीर सेवा बिना, सेवक कभी न होय ॥ 701 ॥

अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय।
यों जल छूटी माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥ 702 ॥

यह मन ताको दीजिये, साँचा सेवक होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तऊ न दूजा होय ॥ 703 ॥

गुरु आज्ञा मानै नहीं, चलै अटपटी चाल।
लोक वेद दोनों गये, आये सिर पर काल ॥ 704 ॥

आशा करै बैकुण्ठ की, दुरमति तीनों काल।
शुक्र कही बलि ना करीं, ताते गयो पताल ॥ 705 ॥

द्वार थनी के पड़ि रहे, धका धनी का खाय।
कबहुक धनी निवाजि है, जो दर छाड़ि न जाय ॥ 706 ॥

उलटे सुलटे बचन के शीष न मानै दुख।
कहैं कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुख ॥ 707 ॥

कहैं कबीर गुरु प्रेम बस, क्या नियरै क्या दूर।
जाका चित जासों बसै सौ तेहि सदा हजूर ॥ 708 ॥

गुरु आज्ञा लै आवही, गुरु आज्ञा लै जाय।
कहैं कबीर सो सन्त प्रिय, बहु विधि अमृत पाय ॥ 709 ॥

गुरुमुख गुरु चितवत रहे, जैसे मणिहि भुजंग।

कहैं कबीर बिसरे नहीं, यह गुरु मुख के अंग ॥ 710 ॥

यह सब तच्छन चितधरे, अप लच्छन सब त्याग ।
सावधान सम ध्यान है, गुरु चरनन में लाग ॥ 711 ॥

ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू सो हेत ।
सत्यवार परमारथी, आदर भाव सहेत ॥ 712 ॥

दया और धरम का ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
सन्तोषी सुख दायका, सेवक परम सुजान ॥ 713 ॥

शीतवन्त सुन ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
लज्ञावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥ 714 ॥

॥ दासता पर दोहे ॥

कबीर गुरु कै भावते, दूरहि ते दीसन्त ।
तन छीना मन अनमना, जग से रूठि फिरन्त ॥ 715 ॥

कबीर गुरु सबको चहै, गुरु को चहै न कोय ।
जब लग आश शरीर की, तब लग दास न होय ॥ 716 ॥

सुख दुख सिर ऊपर सहै, कबहु न छोड़े संग ।
रंग न लागै का, व्यापै सतगुरु रंग ॥ 717 ॥

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कभी तोहि दास ।
रिद्धि-सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छोड़े पास ॥ 718 ॥

लगा रहै सत ज्ञान सो, सबही बन्धन तोड़ ।
कहैं कबीर वा दास सो, काल रहै हथजोड़ ॥ 719 ॥

काहू को न संतापिये, जो सिर हन्ता होय ।

फिर फिर वाकूं बन्दिये, दास लच्छन है सोय ॥ 720 ॥

दास कहावन कठिन है, मैं दासन का दास ।
अब तो ऐसा होय रहूँ पाँव तले की घास ॥ 721 ॥

दासातन हिरदै बसै, साधुन सो अधीन ।
कहैं कबीर सो दास है, प्रेम भक्ति लवलीन ॥ 722 ॥

दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास ।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥ 723 ॥

॥ भक्ति पर दोहे ॥

भक्ति कठिन अति दुर्लभ, भेष सुगम नित सोय ।
भक्ति जु न्यारी भेष से, यह जनै सब कोय ॥ 724 ॥

भक्ति बीज पलटै नहीं जो जुग जाय अनन्त ।
ऊँच-नीच धर अवतरै, होय सन्त का अन्त ॥ 725 ॥

भक्ति भाव भादौं नदी, सबै चली घहराय ।
सरिता सोई सराहिये, जेठ मास ठहराय ॥ 726 ॥

भक्ति जु सीढ़ी मुक्ति की, चढ़े भक्त हरषाय ।
और न कोई चढ़ि सकै, निज मन समझो आय ॥ 727 ॥

भक्ति दुहेली गुरुन की, नहिं कायर का काम ।
सीस उतारे हाथ सों, ताहि मिलै निज धाम ॥ 728 ॥

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु होय सहाय ।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरण भाग मिलाय ॥ 729 ॥

भक्ति भेष बहु अन्तरा, जैसे धरनि अकाश ।

भक्त लीन गुरु चरण में, भेष जगत की आश ॥ 730 ॥

कबीर गुरु की भक्ति करूँ, तज निषय रस चौंज ।
बार-बार नहिं पाइये, मानुष जन्म की मौज ॥ 731 ॥

भक्ति दुवारा साँकरा, राई दशवें भाय ।
मन को मैगल होय रहा, कैसे आवे जाय ॥ 732 ॥

भक्ति बिना नहिं निस्तरे, लाख करे जो कोय ।
शब्द सनेही होय रहे, घर को पहुँचे सोय ॥ 733 ॥

भक्ति नसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय ।
जिन-जिन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥ 734 ॥

गुरु भक्ति अति कठिन है, ज्यों खाड़े की धार ।
बिना साँच पहुँचे नहीं, महा कठिन व्यवहार ॥ 735 ॥

भाव बिना नहिं भक्ति जग, भक्ति बिना नहीं भाव ।
भक्ति भाव इक रूप है, दोऊ एक सुभाव ॥ 736 ॥

कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
मन मनसा माजे नहीं, होन चहत है दास ॥ 737 ॥

कबीर गुरु की भक्ति बिन, धिक जीवन संसार ।
धुवाँ का सा धौरहरा, बिनसत लगै न बार ॥ 738 ॥

जाति बरन कुल खोय के, भक्ति करै चितलाय ।
कहैं कबीर सतगुरु मिलै, आवागमन नशाय ॥ 739 ॥

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़ सी रंग ।
बिपति पड़े यों छाड़सी, केचुलि तजत भुजंग ॥ 740 ॥

आरत है गुरु भक्ति करूँ, सब कारज सिध होय ।

करम जाल भौजाल में, भक्त फँसे नहिं कोय ॥ 741 ॥

जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव ।
कहैं कबीर वह क्यों मिलै, निहकामी निजदेव ॥ 742 ॥

पेटे में भक्ति करै, ताका नाम सपूत ।
मायाधारी मसखरैं, लेते गये अऊत ॥ 743 ॥

निर्पक्षा की भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान ।
निरद्वंद्वी की भक्ति है, निर्लोभी निर्बान ॥ 744 ॥

तिमिर गया रवि देखते, मुमति गयी गुरु ज्ञान ।
सुमति गयी अति लोभ ते, भक्ति गयी अभिमान ॥ 745 ॥

खेत बिगारेउ खरतुआ, सभा बिगारी कूर ।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में घूर ॥ 746 ॥

ज्ञान सपूरण न भिदा, हिरदा नाहिं जुड़ाय ।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥ 747 ॥

भक्ति पन्थ बहुत कठिन है, रती न चालै खोट ।
निराधार का खोल है, अधर धार की चोट ॥ 748 ॥

भक्तन की यह रीति है, बंधे करे जो भाव ।
परमारथ के कारने यह तन रहो कि जाव ॥ 749 ॥

भक्ति महल बहु ऊँच है, दूरहि ते दरशाय ।
जो कोई जन भक्ति करे, शोभा बरनि न जाय ॥ 750 ॥

और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निहकर्म ।
कहैं कबीर पुकारि के, भक्ति करो तजि भर्म ॥ 751 ॥

विषय त्याग बैराग है, समता कहिये ज्ञान ।

सुखदाई सब जीव सों, यही भक्ति परमान ॥ 752 ॥

भक्ति निसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब आय ।
नीचे बाधिनि लुकि रही, कुचल पड़े कू खाय ॥ 753 ॥

भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न जाने मेव ।
पूरण भक्ति जब मिलै, कृपा करे गुरुदेव ॥ 754 ॥

॥ चेतावनी ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटी हाड़ ।
हयबर ऊपर छत्रवट, तो भी देवैं गाड़ ॥ 755 ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अवास ।
काल परौं भुंइ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥ 756 ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, इस जीवन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥ 757 ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस ।
ना जानो कित मारि हैं, कसा घर क्या परदेस ॥ 758 ॥

कबीर मन्दिर लाख का, जाड़िया हीरा लाल ।
दिवस चारि का पेखना, विनशि जायगा काल ॥ 759 ॥

कबीर धूल सकेलि के, पुड़ी जो बाँधी येह ।
दिवस चार का पेखना, अन्त खेह की खेह ॥ 760 ॥

कबीर थोड़ा जीवना, माढ़ै बहुत मढ़ान ।
सबही ऊभ पन्थ सिर, राव रंक सुल्तान ॥ 761 ॥

कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय ।

यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखहु आय ॥ 762 ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, जाम लपेटी हाड़ ।
इस दिन तेरा छत्र सिर, देगा काल उखाड़ ॥ 763 ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठोर लगाव ।
कै सेवा करूँ साधु की, कै गुरु के गुन गाव ॥ 764 ॥

कबीर जो दिन आज है, सो दिन नहीं काल ।
चेति सकै तो चेत ले, मीच परी है ख्याल ॥ 765 ॥

कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि ।
खेत बिचारा क्या करे, धनी करे नहिं बारि ॥ 766 ॥

कबीर यह संसार है, जैसा सेमल फूल ।
दिन दस के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल ॥ 767 ॥

कबीर सपनें रैन के, ऊधरी आये नैन ।
जीव परा बहू लूट में, जागूँ लेन न देन ॥ 768 ॥

कबीर जन्त्र न बाजई, टूटि गये सब तार ।
जन्त्र बिचारा क्याय करे, गया बजावन हार ॥ 769 ॥

कबीर रसरी पाँव में, कहँ सोवै सुख-चैन ।
साँस नगारा कुँच का, बाजत है दिन-रैन ॥ 770 ॥

कबीर नाव तो झाँझरी, भरी बिराने भाए ।
केवट सो परचै नहीं, क्यों कर उतरे पाए ॥ 771 ॥

कबीर पाँच पखेरूआ, राखा पोष लगाय ।
एक जु आया पारधी, लइ गया सबै उड़ाय ॥ 772 ॥

कबीर बेड़ा जरजरा, कूड़ा खेनहार ।

हरूये-हरूये तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥ 773 ॥

एक दिन ऐसा होयगा, सबसों परै बिछोह।
राजा राना राव एक, सावधान क्यों नहिं होय ॥ 774 ॥

ढोल दमामा दुरबरी, सहनाई संग भेरि।
औसर चले बजाय के, है कोई रखै फेरि ॥ 775 ॥

मरेंगे मरि जायँगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायेंगे, छेड़ि बसन्ता गाम ॥ 776 ॥

कबीर पानी हौज की, देखत गया बिलाय।
ऐसे ही जीव जायगा, काल जु पहुँचा आय ॥ 777 ॥

कबीर गाफिल क्या करे, आया काल नजदीक।
कान पकरि के ले चला, ज्यों अजियाहि खटीक ॥ 778 ॥

कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अन्त का मीत ॥ 779 ॥

हाड़ जरै जस लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ 780 ॥

आज काल के बीच में, जंगल होगा वास।
ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरेंगे घास ॥ 781 ॥

ऊजड़ खेड़े टेकरी, धड़ि धड़ि गये कुम्हार।
रावन जैसा चलि गया, लंका का सरदार ॥ 782 ॥

पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥ 783 ॥

आछे दिन पाछे गये, गुरु सों किया न हैत।

अब पछितावा क्या करे, चिड़िया चुग गई खेत ॥ 784 ॥

आज कहै मैं कल भजूँ, काल फिर काल।
आज काल के करत ही, औसर जासी चाल ॥ 785 ॥

कहा चुनावै मेड़िया, चूना माटी लाय।
मीच सुनेगी पापिनी, दौरि के लेगी आय ॥ 786 ॥

सातों शब्द जु बाजते, घर-घर होते राग।
ते मन्दिर खाले पड़े, बैठने लागे काग ॥ 787 ॥

ऊँचा महल चुनाइया, सुबरदन कली ढुलाय।
वे मन्दिर खाले पड़े, रहै मसाना जाय ॥ 788 ॥

ऊँचा मन्दिर मेड़िया, चला कली ढुलाय।
एकहिं गुरु के नाम बिन, जदि तदि परलय जाय ॥ 789 ॥

ऊँचा दीसे धौहरा, भागे चीती पोल।
एक गुरु के नाम बिन, जम मरेंगे रोज ॥ 790 ॥

पाव पलक तो दूर है, मो पै कहा न जाय।
ना जानो क्या होयगा, पाव के चौथे भाय ॥ 791 ॥

मौत बिसारी बाहिरा, अचरज कीया कौन।
मन माटी में मिल गया, ज्यों आटा में लौन ॥ 792 ॥

घर रखवाला बाहिरा, चिड़िया खाई खेत।
आधा परवा ऊबरे, चेति सके तो चेत ॥ 793 ॥

हाड़ जले लकड़ी जले, जले जलवान हार।
अजहुँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥ 794 ॥

पकी हुई खेती देखि के, गरब किया किसान।

अजहुँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥ 795 ॥

पाँच तत्व का पूतरा, मानुष धरिया नाम ।
दिना चार के कारने, फिर-फिर रोके ठाम ॥ 796 ॥

कहा चुनावै मेड़िया, लम्बी भीत उसारि ।
घर तो साढ़े तीन हाथ, घना तो पौने चारि ॥ 797 ॥

यह तन काँचा कुंभ है, लिया फिरै थे साथ ।
टपका लागा फुटि गया, कछु न आया हाथ ॥ 798 ॥

कहा किया हम आपके, कहा करेंगे जाय ।
इत के भये न ऊत के, चाले मूल गँवाय ॥ 799 ॥

जनमै मरन विचार के, कूरे काम निवारि।
जिन पंथा तोहि चालना, सोई पंथ सँवारि ॥ 800 ॥

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय ।
राम निकुल कुल भेटिया, सब कुल गया बिलाय ॥ 801 ॥

दुनिया के धोखे मुआ, चला कुटुम की कानि ।
तब कुल की क्या लाज है, जब ले धरा मसानि ॥ 802 ॥

दुनिया सेती दोसती, मुआ, होत भजन में भंग ।
एका एकी राम सों, कै साधुन के संग ॥ 803 ॥

यह तन काँचा कुंभ है, यहीं लिया रहिवास ।
कबीरा नैन निहारिया, नाहिं जीवन की आस ॥ 804 ॥

यह तन काँचा कुंभ है, चोट चहूँ दिस खाय ।
एकहिं गुरु के नाम बिन, जदि तदि परलय जाय ॥ 805 ॥

जंगल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय ।

ते भी होते मानवी, करते रंग रलियाय ॥ 806 ॥

मलमल खासा पहिनते, खाते नागर पान।
टेढ़ा होकर चलते, करते बहुत गुमान ॥ 807 ॥

महलन माही पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सपने दीसे नहीं, देखत गये बिलाय ॥ 808 ॥

ऊजल पीहने कापड़ा, पान-सुपारी खाय।
कबीर गुरू की भक्ति बिन, बाँधा जमपुर जाय ॥ 809 ॥

कुल करनी के कारने, ढिग ही रहिगो राम।
कुल काकी लाजि है, जब जमकी धूमधाम ॥ 810 ॥

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब कुल काको लाजि है, चाकिर पाँव का होय ॥ 811 ॥

मैं मेरी तू जानि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैखड़ा, मेरी गल की फाँस ॥ 812 ॥

ज्यों कोरी रेजा बुनै, नीरा आवै छौर।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तो दौर ॥ 813 ॥

इत पर धर उत है धरा, बनिजन आये हाथ।
करम करीना बेचि के, उठि करि चालो काट ॥ 814 ॥

जिसको रहना उतघरा, सो क्यों जोड़े मित्र।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥ 815 ॥

मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीत न ऊपजै, जिय विस्वाय न होय ॥ 816 ॥

मैं भौंरो तोहि बरजिया, बन बन बास न लेय।

अटकेगा कहुँ बेलि में, तड़फि- तड़फि जिय देय ॥ 817 ॥

दीन गँवायो दूनि संग, दुनी न चली साथ ।
पाँच कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥ 818 ॥

तू मति जानै बावरे, मेरा है यह कोय ।
प्रान पिण्ड सो बँधि रहा, सो नहिं अपना होय ॥ 819 ॥

या मन गहि जो थिर रहै, गहरी धूनी गाड़ि ।
चलती बिरयाँ उठि चला, हस्ती घोड़ा छाड़ि ॥ 820 ॥

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय ।
कोई काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय ॥ 821 ॥

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार ।
डरत रहै सो ऊबरे, गाफिल खाई मार ॥ 822 ॥

भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय ।
भय पारस है जीव को, निरभय होय न कोय ॥ 823 ॥

भय बिन भाव न ऊपजै, भय बिन होय न प्रीति ।
जब हिरदै से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥ 824 ॥

काल चक्र चक्की चलै, बहुत दिवस औ रात ।
सुगन अगुन दोउ पाटला, तामें जीव पिसात ॥ 825 ॥

बारी-बारी आपने, चले पियारे मीत ।
तेरी बारी जीयरा, नियरे आवै नीत ॥ 826 ॥

एक दिन ऐसा होयगा, कोय काहु का नाहिं ।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥ 827 ॥

बैल गढ़न्ता नर, चूका सींग रू पूँछ ।

एकहिं गुरुँ के ज्ञान बिनु, धिक दाढ़ी धिक मूँछ ॥ 828 ॥

यह बिरियाँ तो फिर नहीं, मनमें देख विचार ।
आया लाभहिं कारनै, जनम जुवा मति हार ॥ 829 ॥

खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकवाद ।
बाँझ हिलावै पालना, तामें कौन सवाद ॥ 830 ॥

चले गये सो ना मिले, किसको पूछूँ जात ।
मात-पिता-सुत बान्धवा, झूठा सब संघात ॥ 831 ॥

विषय वासना उरझिकर जनम गँवाय जाद ।
अब पछितावा क्या करे, निज करनी कर याद ॥ 832 ॥
हे मतिहीनी माछीरी! राखि न सकी शरीर ।
सो सरवर सेवा नहीं , जाल काल नहिं कीर ॥ 833 ॥

मछरी यह छोड़ी नहीं, धीमर तेरो काल ।
जिहि जिहि डाबर धर करो, तहँ तहँ मेले जाल ॥ 834 ॥

परदा रहती पदुमिनी, करती कुल की कान ।
घड़ी जु पहुँची काल की, छोड़ भई मैदान ॥ 835 ॥

जागो लोगों मत सुवो, ना करूँ नींद से प्यार ।
जैसा सपना रैन का, ऐसा यह संसार ॥ 836 ॥

क्या करिये क्या जोड़िये, तोड़े जीवन काज ।
छाड़ि छाड़ि सब जात है, देह गेह धन राज ॥ 837 ॥

जिन घर नौबत बाजती, होत छतीसों राग ।
सो घर भी खाली पड़े, बैठने लागे काग ॥ 838 ॥

कबीर काया पाहुनी, हंस बटाऊ माहिं ।
ना जानूं कब जायगा, मोहि भरोसा नाहिं ॥ 839 ॥

जो तू परा है फंद में निकसेगा कब अंध।
माया मद तोकूँ चढ़ा, मत भूले मतिमंद ॥ 840 ॥

अहिरन की चोरी करै, करै सुई का दान।
ऊँचा चढ़ि कर देखता, केतिक दुरि विमान ॥ 841 ॥

नर नारायन रूप है, तू मति समझे देह।
जो समझै तो समझ ले, खलक पलक में खोह ॥ 842 ॥

मन मुवा माया मुई, संशय मुवा शरीर।
अविनाशी जो न मरे, तो क्यों मरे कबीर ॥ 843 ॥

मरूँ- मरूँ सब कोइ कहै, मेरी मरै बलाय।
मरना था तो मरि चुका, अब को मरने जाय ॥ 844 ॥

एक बून्द के कारने, रोता सब संसार।
अनेक बून्द खाली गये, तिनका नहीं विचार ॥ 845 ॥

समुझाये समुझे नहीं, धरे बहुत अभिमान।
गुरु का शब्द उछेद है, कहत सकल हम जान ॥ 846 ॥

राज पाट धन पायके, क्यों करता अभिमान।
पड़ोसी की जो दशा, भई सो अपनी जान ॥ 847 ॥

मूरख शब्द न मानई, धर्म न सुनै विचार।
सत्य शब्द नहिं खोजई, जावै जम के द्वार ॥ 848 ॥

चेत सवेरे बाचरे, फिर पाछे पछिताय।
तोको जाना दूर है, कहैं कबीर बुझाय ॥ 849 ॥

क्यों खोवे नरतन वृथा, परि विषयन के साथ।
पाँच कुल्हाड़ी मारही, मूरख अपने हाथ ॥ 850 ॥

आँखि न देखे बावरा, शब्द सुनै नहिं कान।
सिर के केस उज्ज्वल भये, अबहु निपट अजान ॥ 851 ॥

ज्ञानी होय सो मानही, बूझै शब्द हमार।
कहैं कबीर सो बाँचि है, और सकल जमधार ॥ 852 ॥

॥ काल के विषय मे दोहे ॥

जोबन मिकदारी तजी, चली निशान बजाय।
सिर पर सेत सिरायचा दिया बुढ़ापै आय ॥ 853 ॥

कबीर टुक-टुक चोंगता, पल-पल गयी बिहाय।
जिव जंजाले पड़ि रहा, दियरा दममा आय ॥ 854 ॥

झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।
जगत् चबैना काल का, कछु मूठी कछु गोद ॥ 855 ॥

काल जीव को ग्रासई, बहुत कह्यो समुझाय।
कहैं कबीर में क्या करूँ, कोई नहीं पतियाय ॥ 856 ॥

निश्चय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय।
कहैं कबीर मैं का कहूँ, देखत न पतियाय ॥ 857 ॥

जो उगै तो आथवै, फूलै सो कुम्हिलाय।
जो चुने सो ढ़हि पड़ै, जनमें सो मरि जाय ॥ 858 ॥

कुशल-कुशल जो पूछता, जग में रहा न कोय।
जरा मुई न भय मुवा, कुशल कहाँ ते होय ॥ 859 ॥

जरा श्वान जोबन ससा, काल अहेरी नित्त।
दो बैरी बिच झोंपड़ा कुशल कहाँ सो मित्र ॥ 860 ॥

बिरिया बीती बल घटा, केश पलटि भये और।
बिगरा काज सँभारि ले, करि छूटने की ठौर ॥ 861 ॥

यह जीव आया दूर ते, जाना है बहु दूर।
बिच के बासे बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥ 862 ॥

कबीर गाफिल क्यों फिरै क्या सोता घनघोर।
तेरे सिराने जम खड़ा, ज्यूँ अँधियारे चोर ॥ 863 ॥

कबीर पगरा दूर है, बीच पड़ी है रात।
न जानों क्या होयेगा, ऊगन्ता परभात ॥ 864 ॥

कबीर मन्दिर आपने, नित उठि करता आल।
मरहट देखी डरपता, चौडढ़े दीया डाल ॥ 865 ॥

धरती करते एक पग, समुंद्र करते फाल।
हाथों परबत लौलते, ते भी खाये काल ॥ 866 ॥

आस पास जोधा खड़े, सबै बजावै गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा परबल काल ॥ 867 ॥

चहुँ दिसि पाका कोट था, मन्दिर नगर मझार।
खिरकी खिरकी पाहरू, गज बन्दा दरबार ॥
चहुँ दिसि ठाढ़े सूरमा, हाथ लिये हाथियार।
सबही यह तन देखता, काल ले गया मात ॥ 868 ॥

हम जाने थे खायेंगे, बहुत जिमि बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि ले गया काल ॥ 869 ॥

काची काया मन अथिर, थिर थिर कर्म करन्त।
ज्यों-ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों-त्यों काल हसन्त ॥ 870 ॥

हाथी परबत फाड़ते, समुन्दर छूट भराय ।
ते मुनिवर धरती गले, का कोई गरब कराय ॥ 871 ॥

संसै काल शरीर में, विषम काल है दूर ।
जाको कोई जाने नहीं, जारि करै सब धूर ॥ 872 ॥

बालपना भोले गया, और जुवा महमंत ।
वृद्धपने आलस गयो, चला जरन्ते अन्त ॥ 873 ॥

बेटा जाये क्या हुआ, कहा बजावै थाल ।
आवन-जावन होय रहा, ज्यों कीड़ी का नाल ॥ 874 ॥

ताजी छूटा शहर ते, कसबे पड़ी पुकार ।
दरवाजा जड़ा ही रहा, निकस गया असवार ॥ 875 ॥

खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय ।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट न होय ॥ 876 ॥

घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान ।
छाप बिना गुरु नाम के, साकट रहा निदान ॥ 877 ॥

संसै काल शरीर में, जारि करै सब धूरि ।
काल से बांचे दास जन जिन पै द्दाल हुजूर ॥ 878 ॥

ऐसे साँच न मानई, तिलकी देखो जाय ।
जारि बारि कोयला करे, जमते देखा सोय ॥ 879 ॥

जारि बारि मिस्सी करे, मिस्सी करि है छार ।
कहैं कबीर कोइला करै, फिर दै दै औतार ॥ 880 ॥

काल पाय जब ऊपजो, काल पाय सब जाय ।
काल पाय सबि बिनिश है, काल काल कहँ खाय ॥ 881 ॥

पात झरन्ता देखि के, हँसती कूपलियाँ।
हम चाले तु मचालिहौं, धीरी बापलियाँ ॥ 882 ॥

फागुन आवत देखि के, मन झूरे बनराय।
जिन डाली हम केलि, सो ही ब्योरे जाय ॥ 883 ॥

मूस्या डरपैं काल सों, कठिन काल को जोर।
स्वर्ग भूमि पाताल में जहाँ जावँ तहँ गोर ॥ 884 ॥

सब जग डरपै काल सों, ब्रह्मा, विष्णु महेश।
सुर नर मुनि औ लोक सब, सात रसातल सेस ॥ 885॥

कबीरा पगरा दूरि है, आय पहुँची साँझ।
जन-जन को मन राखता, वेश्या रहि गयी बाँझ ॥ 886 ॥

जाय झरोखे सोवता, फूलन सेज बिछाय।
सो अब कहँ दीसै नहीं, छिन में गयो बोलाय ॥ 887 ॥

काल फिरे सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान।
कहैं कबीर गहु ज्ञान को, छोड़ सकल अभिमान ॥ 888 ॥

काल काल सब कोई कहै, काल न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काल कहवै सोय ॥ 889 ॥

॥ उपदेश ॥

काल काम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय।
भले भलई पे लहै, बुरे बुराई होय ॥ 890 ॥

काल काम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय।
अनबोवे लुनता नहीं, बोवे लुनता होय ॥ 891 ॥

लेना है सो जल्द ले, कही सुनी मान ।
कहीं सुनी जुग जुग चली, आवागमन बँधान ॥ 892 ॥

खाय-पकाय लुटाय के, करि ले अपना काम ।
चलती बिरिया रे नरा, संग न चले छदाम ॥ 893 ॥

खाय-पकाय लुटाय के, यह मनुवा मिजमान ।
लेना होय सो लेई ले, यही गोय मैदान ॥ 894 ॥

गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सी देह ।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥ 895 ॥

देह खेह खोय जायगी, कौन कहेगा देह ।
निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फल येह ॥ 896 ॥

कहै कबीर देय तू, सब लग तेरी देह ।
देह खेह होय जायगी, कौन कहेगा देह ॥ 897 ॥

देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह ।
बहुरि न देही पाइये, अकी देह सुदेह ॥ 898 ॥

सह ही में सत बाटई, रोटी में ते टूक ।
कहैं कबीर ता दास को, कबहुँ न आवे चूक ॥ 899 ॥

कहते तो कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेय ।
साकट जन औ श्वान को, फेरि जवाब न देय ॥ 900 ॥

हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डार ।
श्वान रूप संसार है, भूकन दे झक मार ॥ 901 ॥

या दुनिया दो रोज की, मत कर या सो हेत ।
गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरन सुख हेत ॥ 902 ॥

कबीर यह तन जात है, सको तो राखु बहोर।
खाली हाथों वह गये, जिनके लाख करोर ॥ 903 ॥